सुंदरकांड

सुंदरकाण्ड रामायण और रामचरितमानस का एक सोपान (भाग) है। इस सोपान के मुख्य घटनाक्रम है – हनुमानजी का लंका की ओर प्रस्थान, विभीषण से भेंट, सीताजी से भेंट करके उन्हें श्री राम की मुद्रिका देना, अक्षय कुमार का वध, लंका दहन और लंका से वापसी। हनुमानजी की शक्ति और सफलता के लिए सुंदरकाण्ड को याद किया जाता है। महाकाव्य रामायण में सुंदरकांड की कथा सबसे अलग है। संपूर्ण रामायण कथा श्रीराम के गुणों और उनके पुरुषार्थ को दर्शाती है। किन्तु सुंदरकांड एकमात्र ऐसा अध्याय है, जो सिर्फ हनुमानजी की शक्ति और विजय का कांड है।

हनुमानजी का सीता शोध के लिए लंका प्रस्थान

चौपाई

जामवंत के बचन सुहाए। सुनि हनुमंत हृदय अति भाए॥
तब लगि मोहि परिखेहु तुम्ह भाई। सहि दुख कंद मूल फल खाई॥

जाम्बवान के सुहावने वचन सुनकर हनुमानजी को अपने मन में वे वचन बहुत अच्छे लगे॥ और हनुमानजी ने कहा की हे भाइयो! आप लोग कन्द, मूल व फल खा, दुःख सह कर मेरी राह देखना॥

जब लगि आवौं सीतहि देखी। होइहि काजु मोहि हरष बिसेषी॥
यह कहि नाइ सबन्हि कहुँ माथा। चलेउ हरषि हियँ धरि रघुनाथा॥

जबतक मै सीताजीको देखकर लौट न आऊँ, क्योंकि कार्य सिद्ध होने पर मन को बड़ा हर्ष होगा॥ ऐसे कह, सबको नमस्कार करके, रामचन्द्रजी का हृदय में ध्यान धरकर, प्रसन्न होकर हनुमानजी लंका जाने के लिए चले॥

सिंधु तीर एक भूधर सुंदर। कौतुक कूदि चढ़ेउ ता ऊपर॥
बार-बार रघुबीर सँभारी। तरकेउ पवनतनय बल भारी॥

समुद्र के तीर पर एक सुन्दर पहाड़ था। उसपर कूदकर हनुमानजी कौतुकी से चढ़ गए॥ फिर वारंवार रामचन्द्रजी का स्मरण करके, बड़े पराक्रम के साथ हनुमानजी ने गर्जना की॥

जेहिं गिरि चरन देइ हनुमंता। चलेउ सो गा पाताल तुरंता॥
जिमि अमोघ रघुपति कर बाना। एही भाँति चलेउ हनुमाना॥

जिस पहाड़ पर हनुमानजी ने पाँव रखे थे, वह पहाड़ तुरंत पाताल के अन्दर चला गया॥ और जैसे श्रीरामचंद्रजी का अमोघ बाण जाता है, ऐसे हनुमानजी वहा से चले॥

जलनिधि रघुपति दूत बिचारी। तैं मैनाक होहि श्रम हारी॥

समुद्र ने हनुमानजी को श्रीराम (रघुनाथ) का दूत जानकर मैनाक नाम पर्वत से कहा की हे मैनाक, तू जा, और इनको ठहरा कर श्रम मिटानेवाला हो॥

मैनाक पर्वत की हनुमानजी से विनती

सोरठा

सिन्धुवचन सुनी कान, तुरत उठेउ मैनाक तब। कपिकहँ कीन्ह प्रणाम, बार बार कर जोरिकै॥

समुद्रके वचन कानो में पड़तेही मैनाक पर्वत वहांसे तुरंत उठा और हनुमानजीके पास आकर वारंवार हाथ जोड़कर उसने हनुमानजीको प्रणाम किया॥

दोहा

हनूमान तेहि परसा कर पुनि कीन्ह प्रनाम। राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ बिश्राम ॥1॥

हनुमानजी ने उसको अपने हाथसे छूकर फिर उसको प्रणाम किया, और कहा की, रामचन्द्रजीका का कार्य किये बिना मुझको विश्राम कहा है? ॥1॥

हनुमानजीकी सुरसा से भेंट

चौपाई

जात पवनसुत देवन्ह देखा। जानैं कहुँ बल बुद्धि बिसेषा॥
सुरसा नाम अहिन्ह कै माता। पठइन्हि आइ कही तेहिं बाता॥

हनुमानजी को जाते देखकर उसके बल और बुद्धि के वैभव को जानने के लिए देवताओं ने नाग माता सुरसा को भेजा। उस नागमाताने आकर हनुमानजी से यह बात कही॥

आजु सुरन्ह मोहि दीन्ह अहारा। सुनत बचन कह पवनकुमारा॥
राम काजु करि फिरि मैं आवौं। सीता कइ सुधि प्रभुहि सुनावौं॥

आज तो मुझको देवताओं ने यह अच्छा आहार दिया। यह बात सुन हँस कर, हनुमानजी बोले॥ की मैं रामचन्द्रजी का काम करके लौट आऊ और सीता की खबर रामचन्द्रजी को सुना दूं॥

तब तव बदन पैठिहउँ आई। सत्य कहउँ मोहि जान दे माई॥
कवनेहुँ जतन देइ नहिं जाना। ग्रससि न मोहि कहेउ हनुमाना॥

फिर हे माता! मै आकर आपके मुँह में प्रवेश करूंगा। अभी तू मुझे जाने दे। इसमें कुछभी फर्क नहीं पड़ेगा। मै तुझे सत्य कहता हूँ॥ जब उसने किसी उपायसे उनको जाने नहीं दिया, तब हनुमानजी ने कहा कि तू क्यों देरी करती है? तू मुझको नही खा सकती॥

जोजन भरि तेहिं बदनु पसारा। कपि तनु कीन्ह दुगुन बिस्तारा॥
सोरह जोजन मुख तेहिं ठयऊ। तुरत पवनसुत बत्तिस भयऊ॥

सुरसाने अपना मुंह एक योजनभरमें फैलाया। हनुमानजी ने अपना शरीर दो योजन विस्तारवाला किया॥ सुरसा ने अपना मुँह सोलह (१६) योजनमें फैलाया। हनुमानजीने अपना शरीर तुरंत बत्तीस (३२) योजन बड़ा किया॥

जस जस सुरसा बदनु बढ़ावा। तासु दून कपि रूप देखावा॥
सत जोजन तेहिं आनन कीन्हा। अति लघु रूप पवनसुत लीन्हा॥

सुरसा ने जैसा जैसा मुंह फैलाया, हनुमानजीने वैसेही अपना स्वरुप उससे दुगना दिखाया॥ जब सुरसा ने अपना मुंह सौ योजन (चार सौ कोस का) में फैलाया, तब हनुमानजी तुरंत बहुत छोटा स्वरुप धारण कर॥

बदन पइठि पुनि बाहेर आवा। मागा बिदा ताहि सिरु नावा॥
मोहि सुरन्ह जेहि लागि पठावा। बुधि बल मरमु तोर मैं पावा॥

उसके मुंहमें पैठ कर (घुसकर) झट बाहर चले आए। फिर सुरसा से विदा मांग कर हनुमानजी ने प्रणाम किया॥ उस वक़्त सुरसा ने हनुमानजी से कहा की हे हनुमान! देवताओंने मुझको जिसके लिए भेजा था, वह तेरा बल और बुद्धि का भेद मैंने अच्छी तरह पा लिया है॥

दोहा

राम काजु सबु करिहहु तुम्ह बल बुद्धि निधान।
आसिष देइ गई सो हरषि चलेउ हनुमान ॥2॥

तुम बल और बुद्धि के भण्डार हो, सो श्रीरामचंद्रजी के सब कार्य सिद्ध करोगे। ऐसे आशीर्वाद देकर सुरसा तो अपने घर को चली, और हनुमानजी प्रसन्न होकर लंकाकी ओर चले ॥2॥

हनुमानजी की छाया पकड़ने वाले राक्षस से भेंट

चौपाई

निसिचरि एक सिंधु महुँ रहई। करि माया नभु के खग गहई॥
जीव जंतु जे गगन उड़ाहीं। जल बिलोकि तिन्ह कै परिछाहीं॥

समुद्र के अन्दर एक राक्षस रहता था। सो वह माया करके आकाशचारी पक्षी और जंतुओको पकड़ लिया करता था॥ जो जीवजन्तु आकाश में उड़कर जाता, उसकी परछाई जल में देखकर॥

गहइ छाहँ सक सो न उड़ाई। एहि बिधि सदा गगनचर खाई॥
सोइ छल हनूमान कहँ कीन्हा। तासु कपटु कपि तुरतहिं चीन्हा॥

उसकी परछाई को जल में पकड़ लेता, जिससे वह जिव जंतु फिर वहा से सरक नहीं सकता। इसतरह वह हमेशा आकाशचारी जिवजन्तुओ को खाया करता था॥ उसने वही कपट हनुमानसे किया। हनुमान ने उसका वह छल तुरंत पहचान लिया॥

ताहि मारि मारुतसुत बीरा। बारिधि पार गयउ मतिधीरा॥
तहाँ जाइ देखी बन सोभा। गुंजत चंचरीक मधु लोभा॥

धीर बुद्धिवाले पवनपुत्र वीर हनुमानजी उसे मारकर समुद्र के पार उतर गए॥ वहा जाकर हनुमानजी वन की शोभा देखते है कि भ्रमर मकरंद के लोभसे गुँजाहट कर रहे है॥

हनुमानजी लंका पहुंचे

नाना तरु फल फूल सुहाए। खग मृग बृंद देखि मन भाए॥
सैल बिसाल देखि एक आगें। ता पर धाइ चढ़ेउ भय त्यागें॥

अनेक प्रकार के वृक्ष फल और फूलोसे शोभायमान हो रहे है। पक्षी और हिरणोंका झूंड देखकर मन मोहित हुआ जाता है॥ वहा सामने हनुमान एक बड़ा विशाल पर्वत देखकर निर्भय होकर उस पहाड़पर कूदकर चढ़ बैठे॥

उमा न कछु कपि कै अधिकाई। प्रभु प्रताप जो कालहि खाई॥
गिरि पर चढ़ि लंका तेहिं देखी। कहि न जाइ अति दुर्ग बिसेषी॥

महदेव जी कहते है कि हे पार्वती! इसमें हनुमान की कुछ भी अधिकता नहीं है। यह तो केवल एक रामचन्द्रजीके ही प्रताप का प्रभाव है कि जो कालकोभी खा जाता है॥ पर्वत पर चढ़कर हनुमानजी ने लंका को देखा, तो वह ऐसी बड़ी दुर्गम है की जिसके विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता॥

अति उतंग जलनिधि चहु पासा। कनक कोट कर परम प्रकासा॥

पहले तो वह पुरी बहुत ऊँची, फिर उसके चारो ओर समुद्र की खाई। उसपर भी सुवर्णके कोटका महाप्रकाश कि जिससे नेत्र चकाचौंध हो जावे॥

लंका का वर्णन

छंद

कनक कोटि बिचित्र मनि कृत सुंदरायतना घना। चउहट्ट हट्ट सुबट्ट बीथीं चारु पुर बहु बिधि बना॥
गज बाजि खच्चर निकर पदचर रथ बरूथन्हि को गनै। बहुरूप निसिचर जूथ अतिबल सेन बरनत नहिं बनै॥

उस नगरीका रत्नों से जड़ा हुआ सुवर्ण का कोट अतिव सुन्दर बना हुआ है। चौहटे, दुकाने व सुन्दर गलियों के बहार उस सुन्दर नगरी के अन्दर बनी है॥ जहा हाथी, घोड़े, खच्चर, पैदल व रथोकी गिनती कोई नहीं कर सकता। और जहा महाबली अद्‌भुत रूपवाले राक्षसोके सेनाके झूंड इतने है की जिसका वर्णन किया नहीं जा सकता॥

बन बाग उपबन बाटिका सर कूप बापीं सोहहीं। नर नाग सुर गंधर्ब कन्या रूप मुनि मन मोहहीं॥

कहुँ माल देह बिसाल सैल समान अतिबल गर्जहीं। नाना अखारेन्ह भिरहिं बहुबिधि एक एकन्ह तर्जहीं॥

जहा वन, बाग़, बागीचे, बावडिया, तालाब, कुएँ, बावलिया शोभायमान हो रही है। जहा मनुष्यकन्या नागकन्या देवकन्या और गन्धर्वकन्याये विराजमान हो रही है कि जिनका रूप देखकर मुनिलोगोका मन मोहित हुआ जाता है॥ कही पर्वत के समान बड़े विशाल देहवाले महाबलिष्ट मल्ल गर्जना करते है और अनेक अखाड़ों में अनेक प्रकारसे भिड रहे है और एक एकको आपस में पटक पटक कर गर्जना कर रहे है॥

करि जतन भट कोटिन्ह बिकट तन नगर चहुँ दिसि रच्छहीं। कहुँ महिष मानुष धेनु खर अज खल निसाचर भच्छहीं॥
एहि लागि तुलसीदास इन्ह की कथा कछु एक है कही। रघुबीर सर तीरथ सरीरन्हि त्यागि गति पैहहिं सही॥

जहा कही हाथीनकेसे मदोमत्त और विकट शरीर वाले करोडो भट चारो तरफसे नगरकी रक्षा करते है और कही वे राक्षस लोग भैंसे, मनुष्य, गौ, गधे, बकरे और पक्षीयोंको खा रहे है॥ राक्षस लोगो का आचरण बहुत बुरा है। इसीलिए तुलसीदासजी कहते है कि मैंने इनकी कथा बहुत संक्षेपसे कही है। चाहो ये महादुष्ट है, परन्तु रामचन्द्रजीके बानरूप पवित्र तीर्थनदीके अन्दर अपना शारीर त्यागकर गति अर्थात मोक्षको प्राप्त होंगे इसमें कुछभी फर्क नहीं है॥

दोहा

पुर रखवारे देखि बहु कपि मन कीन्ह बिचार।
अति लघु रूप धरों निसि नगर करौं पइसार ॥3॥

हनुमानजी ने बहुत से रखवालो को देखकर मन में विचार किया की मै छोटा रूप धारण करके नगर में प्रवेश करूँ ॥3॥

चौपाई

मसक समान रूप कपि धरी। लंकहि चलेउ सुमिरि नरहरी॥
नाम लंकिनी एक निसिचरी। सो कह चलेसि मोहि निंदरी॥

हनुमानजी मच्छर के समान, छोटा-सा रूप धारण कर, प्रभु श्री रामचन्द्रजी के नाम का सुमिरन करते हुए लंका में प्रवेश करते है॥ लंका के द्वार पर हनुमानजी की भेंट लंकिनी नाम की एक राक्षसी से होती है॥ वह पूछती है कि मेरा निरादर करके कहा जा रहे हो?

जानेहि नहीं मरमु सठ मोरा। मोर अहार जहाँ लगि चोरा॥
मुठिका एक महा कपि हनी। रुधिर बमत धरनीं ढनमनी॥

तूने मेरा भेद नहीं जाना? जहाँ तक चोर हैं, वे सब मेरे आहार हैं। महाकपि हनुमानजी उसे एक घूँसा मारते है, जिससे वह पृथ्वी पर ल़ुढक पड़ती है।

पुनि संभारि उठी सो लंका। जोरि पानि कर बिनय ससंका॥
जब रावनहि ब्रह्म बर दीन्हा। चलत बिरंच कहा मोहि चीन्हा॥

वह राक्षसी लंकिनी अपने को सँभालकर फिर उठती है। और डर के मारे हाथ जोड़कर हनुमानजी से कहती है॥ जब ब्रह्मा ने रावण को वर दिया था, तब चलते समय उन्होंने राक्षसों के विनाश की यह पहचान मुझे बता दी थी कि॥

बिकल होसि तैं कपि कें मारे। तब जानेसु निसिचर संघारे॥
तात मोर अति पुन्य बहूता। देखेउँ नयन राम कर दूता॥

जब तू बंदर के मारने से व्याकुल हो जाए, तब तू राक्षसों का संहार हुआ जान लेना। हे तात! मेरे बड़े पुण्य हैं, जो मैं श्री रामजी के दूत को अपनी आँखों से देख पाई।

दोहा

तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग ॥4॥

हे तात! स्वर्ग और मोक्ष के सब सुखों को तराजू के एक पलड़े में रखा जाए, तो भी वे सब मिलकर उस सुख के बराबर नहीं हो सकते, जो क्षण मात्र के सत्संग से होता है ॥4॥

हनुमानजी का लंका में प्रवेश

चौपाई

प्रबिसि नगर कीजे सब काजा। हृदयँ राखि कोसलपुर राजा॥
गरल सुधा रिपु करहिं मिताई। गोपद सिंधु अनल सितलाई॥

अयोध्यापुरी के राजा रघुनाथ को हृदय में रखे हुए नगर में प्रवेश करके सब काम कीजिए। उसके लिए विष अमृत हो जाता है, शत्रु मित्रता करने लगते हैं, समुद्र गाय के खुर के बराबर हो जाता है, अग्नि में शीतलता आ जाती है।

गरुड़ सुमेरु रेनु सम ताही। राम कृपा करि चितवा जाही॥
अति लघु रूप धरेउ हनुमाना। पैठा नगर सुमिरि भगवाना॥

और हे गरुड़! सुमेरु पर्वत उसके लिए रज के समान हो जाता है, जिसे राम ने एक बार कृपा करके देख लिया। तब हनुमान ने बहुत ही छोटा रूप धारण किया और भगवान का स्मरण करके नगर में प्रवेश किया।

हनुमानजी की लंका में सीताजी की खोज

मंदिर मंदिर प्रति करि सोधा। देखे जहँ तहँ अगनित जोधा॥
गयउ दसानन मंदिर माहीं। अति बिचित्र कहि जात सो नाहीं॥

उन्होंने एक-एक (प्रत्येक) महल की खोज की। जहाँ-तहाँ असंख्य योद्धा देखे। फिर वे रावण के महल में गए। वह अत्यंत विचित्र था, जिसका वर्णन नहीं हो सकता।

सयन किएँ देखा कपि तेही। मंदिर महुँ न दीखि बैदेही॥
भवन एक पुनि दीख सुहावा। हरि मंदिर तहँ भिन्न बनावा॥

हनुमानजी ने महल में रावण को सोया हुआ देखा। वहा भी हनुमानजी ने सीताजी की खोज की, परन्तु सीताजी उस महल में कही भी दिखाई नहीं दीं। फिर उन्हें एक सुंदर भवन दिखाई दिया। उस महल में भगवान का एक मंदिर बना हुआ था।

दोहा

रामायुध अंकित गृह सोभा बरनि न जाइ। नव तुलसिका बृंद तहँ देखि हरष कपिराई ॥5॥

वह महल राम के आयुध (धनुष-बाण) के चिह्नों से अंकित था, उसकी शोभा वर्णन नहीं की जा सकती। वहाँ नवीन-नवीन तुलसी के वृक्ष-समूहों को देखकर कपिराज हनुमान हर्षित हुए॥ 5॥

हनुमानजी की विभीषण से भेंट

चौपाई

लंका निसिचर निकर निवासा। इहाँ कहाँ सज्जन कर बासा॥
मन महुँ तरक करैं कपि लागा। तेहीं समय बिभीषनु जागा॥

और उन्हीने सोचा की यह लंका नगरी तो राक्षसोंके कुलकी निवासभूमी है। यहाँ सत्पुरुषो के रहने का क्या काम॥ इस तरह हनुमानजी मन ही मन में विचार करने लगे। इतने में विभीषण की आँख खुली॥

राम राम तेहिं सुमिरन कीन्हा। हृदयँ हरष कपि सज्जन चीन्हा॥
एहि सन सठि करिहउँ पहिचानी। साधु ते होइ न कारज हानी॥

और जागते ही उन्होंने 'राम! राम!' ऐसा स्मरण किया, तो हनुमानजीने जाना की यह कोई सत्पुरुष है। इस बात से हनुमानजीको बड़ा आनंद हुआ॥ हनुमानजीने विचार किया कि इनसे जरूर पहचान करनी चहिये, क्योंकि सत्पुरुषोके हाथ कभी कार्यकी हानि नहीं होती॥

बिप्र रूप धरि बचन सुनाए। सुनत बिभीषन उठि तहँ आए॥
करि प्रनाम पूँछी कुसलाई। बिप्र कहहु निज कथा बुझाई॥

फिर हनुमानजीने ब्राम्हणका रूप धरकर वचन सुनाया तो वह वचन सुनतेही विभीषण उठकर उनके पास आया॥ और प्रणाम करके कुशल पूँछा, की हे विप्र (ब्राह्मणदेव)! जो आपकी बात हो सो हमें समझाकर कहो॥

की तुम्ह हरि दासन्ह महँ कोई। मोरें हृदय प्रीति अति होई॥
की तुम्ह रामु दीन अनुरागी। आयहु मोहि करन बड़भागी॥

विभीषणने कहा कि शायद आप कोई भगवन्तोमेंसे तो नहीं हो! क्योंकि मेरे मनमें आपकी ओर बहुत प्रीती बढती जाती है॥ अथवा मुझको बडभागी करने के वास्ते भक्तोपर अनुराग रखनेवाले आप साक्षात दिनबन्धु ही तो नहीं पधार गए हो॥

दोहा

तब हनुमंत कही सब राम कथा निज नाम। सुनत जुगल तन पुलक मन मगन सुमिरि गुन ग्राम ॥6॥

विभिषणके ये वचन सुनकर हनुमानजीने रामचन्द्रजीकी सब कथा विभीषणसे कही और अपना नाम बताया। परस्परकी बाते सुनतेही दोनोंके शरीर रोमांचित हो गए और श्री रामचन्द्रजीका स्मरण आ जानेसे दोनों आनंदमग्न हो गए ॥6॥

हनुमानजी और विभीषण का संवाद

चौपाई

सुनहु पवनसुत रहनि हमारी। जिमि दसनन्हि महुँ जीभ बिचारी॥
तात कबहुँ मोहि जानि अनाथा। करिहहिं कृपा भानुकुल नाथा॥

विभीषण कहते है की हे हनुमानजी! हमारी रहनी हम कहते है सो सुनो। जैसे दांतों के बिचमें बिचारी जीभ रहती है, ऐसे हम इन राक्षसोंके बिच में रहते है॥ हे प्यारे! वे सूर्यकुल के नाथ (रघुनाथ) मुझको अनाथ जानकर कभी कृपा करेंगे?

तामस तनु कछु साधन नाहीं। प्रीत न पद सरोज मन माहीं॥
अब मोहि भा भरोस हनुमंता। बिनु हरिकृपा मिलहिं नहिं संता॥

जिससे प्रभु कृपा करे ऐसा साधन तो मेरे है नहीं। क्योंकि मेरा शरीर तो तमोगुणी राक्षस है, और न कोई प्रभुके चरणकमलों में मेरे मनकी प्रीति है॥ परन्तु हे हनुमानजी, अब मुझको इस बातका पक्का भरोसा हो गया है कि भगवान मुझपर अवश्य कृपा करेंगे। क्योंकि भगवानकी कृपा बिना सत्पुरुषोंका मिलाप नहीं होता॥

जौं रघुबीर अनुग्रह कीन्हा। तौ तुम्ह मोहि दरसु हठि दीन्हा॥
सुनहु बिभीषन प्रभु कै रीती। करहिं सदा सेवक पर प्रीति॥

रामचन्द्रजी ने मुझपर कृपा की है। इसीसे आपने आकर मुझको दर्शन दिए है॥ विभीषणके यह वचन सुनकर हनुमानजीने कहा कि हे विभीषण! सुनो, प्रभुकी यह रीतीही है की वे सेवकपर सदा परमप्रीति किया करते है॥

कहहु कवन मैं परम कुलीना। कपि चंचल सबहीं बिधि हीना॥
प्रात लेइ जो नाम हमारा। तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा॥

हनुमानजी कहते है की कहो मै कौनसा कुलीन पुरुष हूँ। हमारी जाति देखो (चंचल वानर की), जो महाचंचल और सब प्रकारसे हीन गिनी जाती है॥ जो कोई पुरुष प्रातःकाल हमारा (बंदरों का) नाम ले लेवे तो उसे उसदिन खानेको भोजन नहीं मिलता॥

दोहा

अस मैं अधम सखा सुनु मोहू पर रघुबीर। कीन्हीं कृपा सुमिरि गुन भरे बिलोचन नीर ॥7॥

हे सखा, सुनो मै ऐसा अधम नीच हूँ। तिस पर भी रघुवीरने कृपा कर दी, तो आप तो सब प्रकारसे उत्तम हो॥ आप पर कृपा करे इस में क्या बड़ी बात है। ऐसे प्रभु श्री रामचन्द्रजी के गुणोंका स्मरण करनेसे दोनों के नेत्रोमें आंसू भर आये॥

हनुमानजी और विभीषण का संवाद

चौपाई

जानतहूँ अस स्वामि बिसारी। फिरहिं ते काहे न होहिं दुखारी॥
एहि बिधि कहत राम गुन ग्रामा। पावा अनिर्बाच्य बिश्रामा॥

जो मनुष्य जानते बुझते है ऐसे स्वामीको छोड़ बैठते है। वे दूखी क्यों न होंगे? इस तरह रामचन्द्रजीके परम पवित्र व कानोंको सुख देने वाले गुणग्रामको (गुणसमूहोंको) विभीषणके कहते कहते हनुमानजी ने विश्राम पाया॥

पुनि सब कथा बिभीषन कही। जेहि बिधि जनकसुता तहँ रही॥
तब हनुमंत कहा सुनु भ्राता। देखी चहउँ जानकी माता॥

फिर विभीषण ने हनुमानजी से वह सब कथा कही, कि सीताजी जिस जगह, जिस तरह रहती थी। तब हनुमानजी ने विभीषण से कहा हे भाई सुनो, मैं सीता माताको देखना चाहता हूँ॥

जुगुति बिभीषन सकल सुनाई। चलेउ पवनसुत बिदा कराई॥
करि सोइ रूप गयउ पुनि तहवाँ। बन असोक सीता रह जहवाँ॥

सो मुझे उपाय बताओ। हनुमानजी के यह वचन सुनकर विभीषण ने वहांकी सब तदबिज सुनाई। तब हनुमानजी भी विभीषणसे विदा लेकर वहांसे चले॥ फिर वैसाही छोटासा स्वरुप धर कर हनुमानजी वहा गए कि जहा अशोकवनमें सीताजी रहा करती थी॥

हनुमानजी ने अशोकवन में सीताजी को देखा

देखि मनहि महुँ कीन्ह प्रनामा। बैठेहिं बीति जात निसि जामा॥
कृस तनु सीस जटा एक बेनी। जपति हृदयँ रघुपति गुन श्रेनी॥

हनुमानजी ने सीताजी का दर्शन करके उनको मनही मनमें प्रणाम किया और बैठे। इतने में एक प्रहर रात्रि बीत गयी॥ हनुमानजी सीताजी को देखते है, सो उनका शरीर तो बहुत दुबला हो रहा है। सरपर लटोकी एक वेणी बंधी हुई है। और अपने मनमें श्री राम के गुणों का जप कर रही है॥

दोहा

निज पद नयन दिएँ मन राम पद कमल लीन। परम दुखी भा पवनसुत देखि जानकी दीन ॥8॥

और अपने पैरो में दृष्टि लगा रखी है। मन रामचन्द्रजी के चरणों में लीन हो रहा है। सीताजीकी यह दीन दशा देखकर हनुमानजीको बड़ा दुःख हुआ॥

अशोक वाटिका में रावण और सीताजी का संवाद

चौपाई

तरु पल्लव महँ रहा लुकाई। करइ बिचार करौं का भाई॥
तेहि अवसर रावनु तहँ आवा। संग नारि बहु किएँ बनावा॥

हनुमानजी वृक्षों के पत्तो की ओटमें छिपे हुए मनमें विचार करने लगे कि हे भाई अब मै क्या करू? ॥ उस अवसरमें बहुतसी स्त्रियोंको संग लिए रावण वहा आया। जो स्त्रिया रावणके संग थी, वे बहुत प्रकार के गहनों से बनी ठनी थी॥

बहु बिधि खल सीतहि समुझावा। साम दान भय भेद देखावा॥
कह रावनु सुनु सुमुखि सयानी। मंदोदरी आदि सब रानी॥

उस दुष्टने सीताजी को अनेक प्रकार से समझाया। साम, दाम, भय और भेद अनेक प्रकारसे दिखाया॥ रावणने सीतासे कहा कि हे सुमुखी! जो तू एकबार भी मेरी तरफ देख ले तो हे सयानी॥

तव अनुचरीं करउँ पन मोरा। एक बार बिलोकु मम ओरा॥
तृन धरि ओट कहति बैदेही। सुमिरि अवधपति परम सनेही॥

जो ये मेरी मंदोदरी आदी रानियाँ है इन सबको तेरी दासियाँ बना दूं यह मेरा प्रण जान॥ रावण का वचन सुन बीचमें तृण रखकर (तिनके का आड़ – परदा रखकर), परम प्यारे रामचन्द्रजीका स्मरण करके सीताजीने रावण से कहा॥

सुनु दसमुख खद्योत प्रकासा। कबहुँ कि नलिनी करइ बिकासा॥
अस मन समुझु कहति जानकी। खल सुधि नहिं रघुबीर बान की॥

की हे रावण! सुन, खद्योत अर्थात जुगनू के प्रकाश से कमलिनी कदापी प्रफुल्लित नहीं होती। किंतु कमलिनी सूर्यके प्रकाशसेही प्रफुल्लित होती है। अर्थात तू खद्योतके (जुगनूके) समान है और रामचन्द्रजी सूर्यके सामान है॥ सीताजीने अपने मन में ऐसे समझकर रावणसे कहा कि रे दुष्ट! रामचन्द्रजीके बाणको अभी भूल गया क्या? वह रामचन्द्रजी का बाण याद नहीं है॥

सठ सूनें हरि आनेहि मोही। अधम निलज्ज लाज नहिं तोही॥

अरे निर्लज्ज! अरे अधम! रामचन्द्रजी के सूने तू मुझको ले आया। तुझे शर्म नहीं आती॥

दोहा

आपुहि सुनि खद्योत सम रामहि भानु समान। परुष बचन सुनि काढ़ि असि बोला अति खिसिआन ॥9॥

सीता के मुख से कठोर वचन अर्थात अपनेको खद्योतके (जुगनूके) तुल्य और रामचन्द्रजीको सुर्यके समान सुनकर रावण को बड़ा क्रोध हुआ। जिससे उसने तलवार निकाल कर ये वचन कहे ॥9॥

रावण और सीताजी का संवाद

चौपाई

सीता तैं मम कृत अपमाना। कटिहउँ तव सिर कठिन कृपाना॥
नाहिं त सपदि मानु मम बानी। सुमुखि होति न त जीवन हानी॥

हे सीता! तूने मेरा मान भंग कर दिया है। इस वास्ते इस कठोर खडग (कृपान) से मैं तेरा सिर उड़ा दूंगा॥ हे सुमुखी, या तो तू जल्दी मेरा कहना मान ले, नहीं तो तेरा जी जाता है॥

स्याम सरोज दाम सम सुंदर। प्रभु भुज करि कर सम दसकंधर॥
सो भुज कंठ कि तव असि घोरा। सुनु सठ अस प्रवान पन मोरा॥

रावण के ये वचन सुनकर सीताजी ने कहा हे शठ रावण, सुन मेरा भी तो ऐसा पक्का प्रण है की या तो इस कंठपर श्याम कमलोकी मालाके समान सुन्दर और हाथिओ के सुन्ड के समान सुढार रामचन्द्रजी की भुजा रहेगी या तेरा यह महाघोर खडंग रहेगा। अर्थात रामचन्द्रजी के बिना मुझे मरना मंजूर है पर अन्यका स्पर्श नहीं करूंगी॥

चंद्रहास हरु मम परितापं। रघुपति बिरह अनल संजातं॥
सीतल निसित बहसि बर धारा। कह सीता हरु मम दुख भारा॥

सीता उस तलवार से प्रार्थना करती है कि हे तलवार! तू मेरा शिर उडाकर मेरे संताप को दूर कर क्योंकि मै रामचन्द्रजीकी विरहरूप अग्निसे संतप्त हो रही हूँ॥ सीताजी कहती है, हे असिवर! तेरी धाररूप शीतल रात्रिसे मेरे भारी दुःखको दूर कर॥

सुनत बचन पुनि मारन धावा। मयतनयाँ कहि नीति बुझावा॥
कहेसि सकल निसिचरिन्ह बोलाई। सीतहि बहु बिधि त्रासहु जाई॥

सीताजीके ये वचन सुनकर, रावण फिर सीताजी को मारने को दौड़ा। तब मय दैत्यकी कन्या मंदोदरी ने नितिके वचन कह कर उसको समझाया॥ फिर रावणने सीताजीकी रखवारी सब राक्षसियोंको बुलाकर कहा कि तुम जाकर सीता को अनेक प्रकार से त्रास दिखाओ॥

मास दिवस महुँ कहा न माना। तौ मैं मारबि काढ़ि कृपाना॥

यदि वह एक महीने के भीतर मेरा कहना नहीं मानेगी तो मैं तलवार निकाल कर उसे मार डालूँगा॥

दोहा

भवन गयउ दसकंधर इहाँ पिसाचिनि बृंद। सीतहि त्रास देखावहिं धरहिं रूप बहु मंद ॥10॥

उधर तो रावण अपने भवनके भीतर गया। इधर वे नीच राक्षसियोंके झुंडके झुंड अनेक प्रकारके रूप धारण कर के सीताजी को भय दिखने लगे॥

त्रिजटा का स्वप्न

चौपाई (Chaupai – Sunderkand)

त्रिजटा नाम राच्छसी एका। राम चरन रति निपुन बिबेका॥
सबन्हौ बोलि सुनाएसि सपना। सीतहि सेइ करहु हित अपना॥

उनमें एक त्रिजटा नाम की राक्षसी थी। वह रामचन्द्रजीके चरनोकी परमभक्त और बड़ी निपुण और विवेकवती थी॥ उसने सब राक्षसियों को अपने पास बुलाकर जो उसको सपना आया था वहा सबको सुनाया और उनसे कहा की हम सबको सीताजी की सेवा करके अपना हित कर लेना चाहिए॥

सपनें बानर लंका जारी। जातुधान सेना सब मारी॥
खर आरूढ़ नगन दससीसा। मुंडित सिर खंडित भुज बीसा॥

क्योकि मैंने सपने में ऐसा देखा है कि एक वानरने लंकापुरीको जलाकर राक्षसों की सारी सेनाको मार डाला॥ और रावण गधेपर सवार होकर दक्षिण दिशामें जाता हुआ मैंने सपने में देखा है। वह भी कैसा की नग्नशरीर, सिर मुंडा हुआ और बीस भुजायें टूटी हुई॥

एहि बिधि सो दच्छिन दिसि जाई। लंका मनहुँ बिभीषन पाई॥
नगर फिरी रघुबीर दोहाई। तब प्रभु सीता बोलि पठाई॥

और मैंने यह भी देखा है कि मानो लंकाका राज विभिषणको मिल गया है॥ और नगरिके अन्दर रामचन्द्रजी की दुहाई फिर गयी है। तब रामचन्द्रजीने सीताको बुलाने के लिए बुलावा भेजा है॥

यह सपना मैं कहउँ पुकारी। होइहि सत्य गएँ दिन चारी॥
तासु बचन सुनि ते सब डरीं। जनकसुता के चरनन्हि परीं॥

त्रिजटा कहती है की मै आपसे यह बात खूब सोच कर कहती हूँ की यह स्वप्न चार दिन बितने के बाद सत्य हो जाएगा॥ त्रिजटाके ये वचन सुनकर सब राक्षसिया डर गई। सो डरके मारे सब राक्षसिया सीताजीके चरणों में गिर पड़ी॥

दोहा

जहँ तहँ गईं सकल तब सीता कर मन सोच। मास दिवस बीतें मोहि मारिहि निसिचर पोच ॥11॥

फिर सब राक्षसियां मिलकर जहां तहां चली गयी। तब सीताजी अपने मनमें सोच करने लगी की एक महिना बितनेके बाद यह नीच राक्षस (रावण) मुझे मार डालेगा ॥11॥

सीताजी और त्रिजटा का संवाद

चौपाई

त्रिजटा सन बोलीं कर जोरी। मातु बिपति संगिनि तैं मोरी॥
तजौं देह करु बेगि उपाई। दुसह बिरहु अब नहिं सहि जाई॥

फिर त्रिजटाके पास हाथ जोड़कर सीताजी ने कहा की हे माता! तू मेरी सच्ची विपत्तिकी साथिन है॥ सीताजी कहती है की जल्दी उपाय कर नहीं तो मै अपना देह तजती हूँ। क्योंकि अब मुझसे अति दुखद विरहका दुःख सहा नहीं जाता॥

आनि काठ रचु चिता बनाई। मातु अनल पुनि देहि लगाई॥
सत्य करहि मम प्रीति सयानी। सुनै को श्रवन सूल सम बानी॥

हे माता! अब तू जल्दी काठ ला और चिता बना कर मुझको जलानेके वास्ते जल्दी उसमे आग लगा दे॥ हे सयानी! तू मेरी प्रीति सत्य कर। सीताजीके ऐसे शूलके सामान महाभयानाक वचन सुनकर॥

त्रिजटा ने सीताजी को सान्तवना दी

सुनत बचन पद गहि समुझाएसि। प्रभु प्रताप बल सुजसु सुनाएसि॥
निसि न अनल मिल सुनु सुकुमारी। अस कहि सो निज भवन सिधारी॥

त्रिजटा ने तुरंत सीताजी के चरणकमल गहे और सिताजीको समझाया और प्रभु रामचन्द्रजी का प्रताप, बल और उनका सुयश सुनाया॥ और सिताजीसे कहा की हे राजपुत्री! अभी रात्री है, इसलिए अभी अग्नि नहीं मिल सकती। ऐसा कहा कर वहा अपने घरको चली गयी॥

कह सीता बिधि भा प्रतिकूला। मिलिहि न पावक मिटिहि न सूला॥
देखिअत प्रगट गगन अंगारा। अवनि न आवत एकउ तारा॥

तब अकेली बैठी बैठी सीताजी कहने लगी की क्या करू दैवही प्रतिकूल हो गया। अब न तो अग्नि मिले और न मेरा दुःख कोई तरहसे मिटसके॥ ऐसे कह तारोको देख कर सीताजी कहती है की ये आकाशके भीतर तो बहुतसे अंगारे प्रकट दीखते है परंतु पृथ्वीपर पर इनमेसे एकभी तारा नहीं आता॥

पावकमय ससि स्रवत न आगी। मानहुँ मोहि जानि हतभागी॥
सुनहि बिनय मम बिटप असोका। सत्य नाम करु हरु मम सोका॥

सीताजी चन्द्रमा को देखकर कहती है कि यह चन्द्रमा का स्वरुप साक्षात अग्निमय दिख पड़ता है पर यहभी मानो मुझको मंदभागिन जानकार आगको नहीं बरसाता॥ अशोकके वृक्ष को देखकर उससे प्रार्थना करती है कि हे अशोक वृक्ष! मेरी विनती सुनकर तू अपना नाम सत्य कर। अर्थात मुझे अशोक अर्थात शोकरहित कर। मेरे शोकको दूर कर॥

नूतन किसलय अनल समाना। देहि अगिनि जनि करहि निदाना॥
देखि परम बिरहाकुल सीता। सो छन कपिहि कलप सम बीता॥

हे अग्निके समान रक्तवर्ण नविन कोंपलें (नए कोमल पत्ते)! तुम मुझको अग्नि देकर मुझको शांत करो॥ इस प्रकार सीताजीको विरह से अत्यन्त व्याकुल देखकर हनुमानजीका वह एक क्षण कल्पके समान बीतता गया॥

दोहा

कपि करि हृदयँ बिचार दीन्हि मुद्रिका डारि तब। जनु असोक अंगार दीन्ह हरषि उठि कर गहेउ ॥12॥

उस समय हनुमानजीने अपने मनमे विचार करके अपने हाथमेंसे मुद्रिका (अँगूठी) डाल दी। सो सीताजी को वह मुद्रिका उससमय कैसी दिख पड़ी की मानो अशोकके अंगारने प्रगट हो कर हमको आनंद दिया है (मानो अशोक ने अंगारा दे दिया।)। सो सिताजीने तुरंत उठकर वह मुद्रिका अपने हाथमें ले ली ॥12॥

हनुमान सीताजी से मिले

चौपाई

तब देखी मुद्रिका मनोहर। राम नाम अंकित अति सुंदर॥
चकित चितव मुदरी पहिचानी। हरष बिषाद हृदयँ अकुलानी॥

फिर सीताजीने उस मुद्रिकाको देखा तो वह सुन्दर मुद्रिका रामचन्द्रजीके मनोहर नामसे अंकित हो रही थी अर्थात उसपर श्री राम का नाम खुदा हुआ था॥ उस मुद्रिकाको देखतेही सीताजी चकित होकर देखने लगी। आखिर उस मुद्रिकाको पहचान कर हृदय में अत्यंत हर्ष और विषादको प्राप्त हुई और बहुत अकुलाई॥

जीति को सकइ अजय रघुराई। माया तें असि रचि नहिं जाई॥
सीता मन बिचार कर नाना। मधुर बचन बोलेउ हनुमाना॥

यह क्या हुआ? यह रामचन्द्रजीकी नामांकित मुद्रिका यहाँ कैसे आयी? या तो उन्हें जितनेसे यह मुद्रिका यहाँ आ सकती है, किंतु उन अजेय रामचन्द्रजीको जीतसके ऐसा तो जगतमे कौन है? अर्थात उनको जीतनेवाला जगतमे है ही नहीं। और जो कहे की यह राक्षसोने मायासे बनाई है सो यहभी नहीं हो सकता। क्योंकि मायासे ऐसी बन नहीं सकती॥ इस प्रकार सीताजी अपने मनमे अनेक प्रकार से विचार कर रही थी। इतनेमें ऊपरसे हनुमानजी ने मधुर वचन कहे॥

रामचंद्र गुन बरनैं लागा। सुनतहिं सीता कर दुख भागा॥
लागीं सुनैं श्रवन मन लाई। आदिहु तें सब कथा सुनाई॥

हनुमानजी रामचन्द्रजीके गुनोका वर्णन करने लगे। उनको सुनतेही सीताजीका सब दुःख दूर हो गया॥ और वह मन और कान लगा कर सुनने लगी। हनुमानजीनेभी आरंभसे लेकर सब कथा सीताजी सुनायी॥

श्रवनामृत जेहिं कथा सुहाई। कही सो प्रगट होति किन भाई॥
तब हनुमंत निकट चलि गयऊ। फिरि बैठीं मन बिसमय भयऊ॥

हनुमानजीके मुखसे रामचन्द्रजीका चरितामृत सुनकर सीताजीने कहा कि जिसने मुझको यह कानोंको अमृतसी मधुर लगनेवाली कथा सुनाई है वह मेरे सामने आकर प्रकट क्यों नहीं होता? सीताजीके ये वचन सुनकर हनुमानजी चलकर उनके समीप गए तो हनुमानजी का वानर रूप देखकर सीताजीके मनमे बड़ा विस्मय हुआ की यह क्या! सो कपट समझकर हनुमानजी को पीठ देकर बैठ गयी॥

राम दूत मैं मातु जानकी। सत्य सपथ करुनानिधान की॥
यह मुद्रिका मातु मैं आनी। दीन्हि राम तुम्ह कहँ सहिदानी॥

तब हनुमानजीने सीताजीसे कहा की हे माता! मै रामचन्द्रजीका दूत हूं। मै रामचन्द्रजीकी शपथ खाकर कहता हूँ की इसमें फर्क नहीं है॥ और रामचन्द्रजीने आपके लिए जो निशानी दी थी, वह यह मुद्रिका (अँगूठी) मैंने लाकर आपको दी है॥

नर बानरहि संग कहु कैसें। कही कथा भइ संगति जैसें॥

तब सिताजी ने कहा की हे हनुमान! नर और वानरोंके बीच आपसमें प्रीति कैसे हुई वह मुझे कह। तब उनके परस्पर्मे जैसे प्रीति हुई थी वे सब समाचार हनुमानजी ने सिताजीसे कहे॥

दोहा

कपि के बचन सप्रेम सुनि उपजा मन बिस्वास जाना मन क्रम बचन यह कृपासिंधु कर दास ॥13॥

हनुमानजीके प्रेमसहित वचन सुनकर सीताजीके मनमे पक्का भरोसा आ गया और उन्होंने जान लिया की यह मन, वचन और कायासे कृपासिंधु श्रीरामजी के दास है॥

हनुमान ने सीताजी को आश्वासन दिया

चौपाई

हरिजन जानि प्रीति अति गाढ़ी। सजल नयन पुलकावलि बाढ़ी॥
बूड़त बिरह जलधि हनुमाना। भयहु तात मो कहुँ जलजाना॥

हनुमानजी को हरिभक्त जानकार सीताजीके मन में अत्यंत प्रीति बड़ी, शरीर अत्यंत पुलकित हो गया और नेत्रोमे जल भर आया॥ सीताजीने हनुमान से कहा की हे हनुमान! मै विरहरूप समुद्रमें डूब रही थी, सो हे तात! मुझको तिरानेके के लिए तुम नौका हुए हो॥

अब कहु कुसल जाउँ बलिहारी। अनुज सहित सुख भवन खरारी॥
कोमलचित कृपाल रघुराई। कपि केहि हेतु धरी निठुराई॥

अब तुम मुझको बताओ कि सुखधाम श्रीराम लक्ष्मणसहित कुशल तो है॥ हे हनुमान! रामचन्द्रजी तो बड़े दयालु और बड़े कोमलचित्त है। फिर यह कठोरता आपने क्यों धारण कि है? ॥

सहज बानि सेवक सुखदायक। कबहुँक सुरति करत रघुनायक॥
कबहुँ नयन मम सीतल ताता। होइहहिं निरखि स्याम मृदु गाता॥

यह तो उनका सहज स्वभावही है कि जो उनकी सेवा करता है उनको वे सदा सुख देते रहते है॥ सो हे हनुमान! वे रामचन्द्रजी कभी मुझको भी याद करते है? ॥ कभी मेरे भी नेत्र रामचन्द्रजीके कोमल श्याम शरिरको देखकर शीतल होंगे॥

बचनु न आव नयन भरे बारी। अहह नाथ हौं निपट बिसारी॥
देखि परम बिरहाकुल सीता। बोला कपि मृदु बचन बिनीता॥

सीताजीकी उस समय यह दशा हो गयी कि मुखसे वचन निकलना बंद हो गया और नेत्रोमें जल भर आया। इस दशा में सीताजीने प्रार्थना की कि हे नाथ! मुझको आप बिल्कुलही भूल गए॥ सीताजीको विरह्से अत्यंत व्याकुल देखकर हनुमानजी बड़े विनयके साथ कोमल वचन बोले॥

मातु कुसल प्रभु अनुज समेता। तव दुख दुखी सुकृपा निकेता॥
जनि जननी मानह जियँ ऊना। तुम्ह ते प्रेमु राम कें दूना॥

हे माता! लक्ष्मणसहित रामचन्द्रजी सब प्रकार से प्रसन्न है, केवल एक आपके दुःख से तो वे कृपानिधान अवश्य दुखी है। बाकी उनको कुछ भी दुःख नहीं है॥ हे माता! आप अपने मनको उन मत मानो (अर्थात रंज मत करो, मन छोटा करके दुःख मत कीजिए), क्योंकि रामचन्द्रजीका प्यार आपकी और आपसे भी दुगुना है॥

दोहा

रघुपति कर संदेसु अब सुनु जननी धरि धीर। अस कहि कपि गदगद भयउ भरे बिलोचन नीर ॥14॥

हे माता! अब मै आपको जो रामचन्द्रजीका संदेशा सुनाता हूं सो आप धीरज धारण करके उसे सुनो ऐसे कह्तेही हनुमानजी प्रेम से गदगद हो गए और नेत्रोमे जल भर आया ॥14॥

हनुमान ने सीताजीको रामचन्द्रजीका सन्देश दिया

चौपाई

कहेउ राम बियोग तव सीता। मो कहुँ सकल भए बिपरीता॥
नव तरु किसलय मनहुँ कृसानू। कालनिसा सम निसि ससि भानू॥

हनुमानजी ने सीताजी से कहा कि हे माता! रामचन्द्रजी ने जो सन्देश भेजा है वह सुनो। रामचन्द्रजी ने कहा है कि तुम्हारे वियोगमें मेरे लिए सभी बाते विपरीत हो गयी है॥ नविन कोपलें तो मानो अग्निरूप हो गए है। रात्रि मानो कालरात्रि बन गयी है। चन्द्रमा सूरजके समान दिख पड़ता है॥

कुबलय बिपिन कुंत बन सरिसा। बारिद तपत तेल जनु बरिसा॥
जे हित रहे करत तेइ पीरा। उरग स्वास सम त्रिबिध समीरा॥

कमालोका वन मानो भालोके समूहके समान हो गया है। मेघकी वृष्टि मानो तापेहुए तेलके समान लगती है॥ मै जिस वृक्षके तले बैठता हूं, वही वृक्ष मुझको पीड़ा देता है और शीतल, सुगंध, मंद पवन मुझको साँपके श्वासके समान प्रतीत होता है॥

कहेहू तें कछु दुख घटि होई। काहि कहौं यह जान न कोई॥
तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एकु मनु मोरा॥

और अधिक क्या कहूं? क्योंकि कहनेसे कोई दुःख घट थोडाही जाता है? परन्तु यह बात किसको कहूं! कोई नहीं जानता॥ मेरे और आपके प्रेमके तत्वको कौन जानता है! कोई नहीं जानता। केवल एक मेरा मन तो उसको भलेही पहचानता है॥

सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं। जानु प्रीति रसु एतनेहि माहीं॥
प्रभु संदेसु सुनत बैदेही। मगन प्रेम तन सुधि नहिं तेही॥

पर वह मन सदा आपके पास रहता है। इतनेहीमें जान लेना कि राम किस कदर प्रेमके वश है॥ रामचन्द्रजीके सन्देश सुनतेही सीताजी ऐसी प्रेममे मग्न होगयी कि उन्हें अपने शरीरकी भी सुध न रही॥

कह कपि हृदयँ धीर धरु माता। सुमिरु राम सेवक सुखदाता॥
उर आनहु रघुपति प्रभुताई। सुनि मम बचन तजहु कदराई॥

उस समय हनुमानजीने सीताजीसे कहा कि हे माता! आप सेवकजनोंके सुख देनेवाले श्रीराम को याद करके मनमे धीरज धरो॥ श्रीरामचन्द्रजीकी प्रभुताको हृदयमें मानकर मेरे वचनोको सुनकर विकलताको तज दो (छोड़ दो)॥

दोहा

निसिचर निकर पतंग सम रघुपति बान कृसानु। जननी हृदयँ धीर धरु जरे निसाचर जानु ॥15॥

हे माता! रामचन्द्रजीके बानरूप अग्निके आगे इस राक्षससमूहको आप पतंगके समान जानो और इन सब राक्षसोको जले हुए जानकर मनमे धीरज धरो ॥15॥

सीताजीके मन में संदेह

चौपाई

जौं रघुबीर होति सुधि पाई। करते नहिं बिलंबु रघुराई॥
राम बान रबि उएँ जानकी। तम बरुथ कहँ जातुधान की॥

हे माता! जो रामचन्द्रजीको आपकी खबर मिल जाती तो प्रभु कदापि विलम्ब नहीं करते॥क्योंकि रामचन्द्रजी के बानरूप सूर्यके उदय होने पर राक्षस समूहरूप अन्धकार पटलका पता कहाँ है? ॥

अबहिं मातु मैं जाउँ लवाई। प्रभु आयुस नहिं राम दोहाई॥
कछुक दिवस जननी धरु धीरा। कपिन्ह सहित अइहहिं रघुबीरा॥

हनुमानजी कहते है की हे माता! मै आपको अभी ले जाऊं, परंतु करूं क्या? रामचन्द्रजीकी आपको ले आनेकी आज्ञा नहीं है। इसलिए मै कुछ कर नहीं सकता। यह बात मै रामचन्द्रजीकी शपथ खाकर कहता हूँ॥ इसलिए हे माता! आप कुछ दिन धीरज धरो। रामचन्द्रजी वानरोंकें साथ यहाँ आयेंगे॥

निसिचर मारि तोहि लै जैहहिं। तिहुँ पुर नारदादि जसु गैहहिं॥
हैं सुत कपि सब तुम्हहि समाना। जातुधान अति भट बलवाना॥

और राक्षसोंको मारकर आपको ले जाएँगे। तब रामचन्द्रजीका यह सुयश तीनो लोकोमें नारदादि मुनि गाएँगे॥ हनुमानजी की यह बात सुनकर सीताजी ने कहा की हे पुत्र! सभी वानर तो तुम्हारे सामान है और राक्षस बड़े योद्धा और बलवान है। फिर यह बात कैसे बनेगी? ॥

मोरें हृदय परम संदेहा। सुनि कपि प्रगट कीन्हि निज देहा॥
कनक भूधराकार सरीरा। समर भयंकर अतिबल बीरा॥

इसका मेरे मनमे बड़ा संदेह है। सीताजीका यह वचन सुनकर हनुमानजीने अपना शरीर प्रकट किया॥ की जो शरीर सुवर्ण के पर्वत के समान विशाल, युद्धके बिच बड़ा विकराल और रणके बीच बड़ा धीरजवाला था॥

सीता मन भरोस तब भयऊ। पुनि लघु रूप पवनसुत लयऊ॥

हनुमानजीके उस शरीरको देखकर सीताजीके मनमें पक्का भरोसा आ गया। तब हनुमानजी ने अपना छोटा स्वरूप धर लिया॥

दोहा

सुनु माता साखामृग नहिं बल बुद्धि बिसाल। प्रभु प्रताप तें गरुड़हि खाइ परम लघु ब्याल ॥16॥

हनुमानजीने कहा कि हे माता! सुनो, वानरोंमे कोई विशाल बुद्धि का बल नहीं है। परंतु प्रभुका प्रताप ऐसा है की उसके बलसे छोटासा सांप गरूडको खा जाता है ॥16॥

सिताजीने हनुमानको आशीर्वाद दिया

चौपाई

मन संतोष सुनत कपि बानी। भगति प्रताप तेज बल सानी॥
आसिष दीन्हि रामप्रिय जाना। होहु तात बल सील निधाना॥

भक्ति, प्रताप, तेज और बलसे मिलीहुई हनुमानजी की वाणी सुनकर सीताजीके मनमें बड़ा संतोष हुआ॥ फिर सीताजीने हनुमान को श्री राम का प्रिय जानकर आशीर्वाद दिया कि हे तात! तुम बल और शील के निधान होओ॥

अजर अमर गुननिधि सुत होहू। करहुँ बहुत रघुनायक छोहू॥
करहुँ कृपा प्रभु अस सुनि काना। निर्भर प्रेम मगन हनुमाना॥

हे पुत्र! तुम अजर (जरारहित – बुढ़ापे से रहित), अमर (मरणरहित) और गुणोंका भण्डार हो और रामचन्द्रजी तुमपर सदा कृपा करें॥ 'प्रभु रामचन्द्रजी कृपा करेंगे' ऐसे वचन सुनकर हनुमानजी प्रेमानन्दमें अत्यंत मग्न हुए॥

बार बार नाएसि पद सीसा। बोला बचन जोरि कर कीसा॥
अब कृतकृत्य भयउँ मैं माता। आसिष तव अमोघ बिख्याता॥

और हनुमानजी ने वारंवार सीताजीके चरणोंमें शीश नवाकर, हाथ जोड़कर, यह वचन बोले॥ हे माता! अब मै कृतार्थ हुआ हूँ, क्योंकि आपका आशीर्वाद सफलही होता है, यह बात जगत्प्रसिद्ध है॥

हनुमानजीने अशोकवनमें फल खाने की आज्ञा मांगी

सुनहु मातु मोहि अतिसय भूखा। लागि देखि सुंदर फल रूखा॥
सुनु सुत करहिं बिपिन रखवारी। परम सुभट रजनीचर भारी॥

हे माता! सुनो, वृक्षोंके सुन्दर फल लगे देखकर मुझे अत्यंत भूख लग गयी है, सो मुझे आज्ञा दो॥ तब सीताजीने कहा कि हे पुत्र! सुनो, इस वनकी बड़े बड़े भारी योद्धा राक्षस रक्षा करते है॥

तिन्ह कर भय माता मोहि नाहीं। जौं तुम्ह सुख मानहु मन माहीं॥

तब हनुमानजी ने कहा कि हे माता! जो आप मनमे सुख माने (प्रसन्न होकर आज्ञा दें), तो मुझको उनका कुछ भय नहीं है॥

दोहा

देखि बुद्धि बल निपुन कपि कहेउ जानकीं जाहु। रघुपति चरन हृदयँ धरि तात मधुर फल खाहु ॥17॥

तुलसीदासजी कहते है कि हनुमानजीका विलक्षण बुद्धिबल देखकर सीताजीने कहा कि हे पुत्र! जाओ, रामचन्द्रजी के चरणों को हृदयमे रख कर मधुर मधुर फल खाओ ॥17॥

अशोक वाटिका विध्वंस और अक्षय कुमार का वध

चौपाई

चलेउ नाइ सिरु पैठेउ बागा। फल खाएसि तरु तोरैं लागा॥
रहे तहाँ बहु भट रखवारे। कछु मारेसि कछु जाइ पुकारे॥

सीताजी के वचन सुनकर उनको प्रणाम करके हनुमानजी बाग के अन्दर घुस गए। फल फल तो सब खा गए और वृक्षोंको तोड़ मरोड़ दिया॥ जो वहां रक्षाके के लिए राक्षस रहते थे उनमेसे से कुछ मारे गए और कुछ रावणसे पुकारे (रावण के पास गए और कहा)॥

नाथ एक आवा कपि भारी। तेहिं असोक बाटिका उजारी॥
खाएसि फल अरु बिटप उपारे। रच्छक मर्दि मर्दि महि डारे॥

कि हे नाथ! एक बड़ा भारी वानर आया है। उसने तमाम अशोकवनका सत्यानाश कर दिया है॥ उसने फल फल तो सारे खा लिए है, और वृक्षोंको उखड दिया है। और रखवारे राक्षसोंको पटक पटक कर मार गिराया है॥

सुनि रावन पठए भट नाना। तिन्हहि देखि गर्जेउ हनुमाना॥
सब रजनीचर कपि संघारे। गए पुकारत कछु अधमारे॥

यह बात सुनकर रावण ने बहुत सुभट पठाये (राक्षस योद्धा भेजे)। उनको देखकर युद्धके उत्साहसे हनुमानजीने भारी गर्जना की॥ हनुमानजीने उसी समय तमाम राक्षसोंको मार डाला। जो कुछ अधमरे रह गए थे वे वहा से पुकारते हुए भागकर गए॥

पुनि पठयउ तेहिं अच्छकुमारा। चला संग लै सुभट अपारा॥
आवत देखि बिटप गहि तर्जा। ताहि निपाति महाधुनि गर्जा॥

फिर रावण ने मंदोदरिके पुत्र अक्षय कुमार को भेजा। वह भी असंख्य योद्धाओं को संग लेकर गया। उसे आते देखतेही हनुमानजीने हाथमें वृक्ष लेकर उसपर प्रहार किया और उसे मारकर फिर बड़े भारी शब्दसे (जोर से) गर्जना की॥

दोहा

कछु मारेसि कछु मर्देसि कछु मिलएसि धरि धूरि। कछु पुनि जाइ पुकारे प्रभु मर्कट बल भूरि ॥18॥
हनुमानजीने कुछ राक्षसोंको मारा और कुछ को कुचल डाला और कुछ को धूल में मिला दिया। और जो बच गए थे वे जाकर रावण के आगे पुकारे कि हे नाथ! वानर बड़ा बलवान है। उसने अक्षयकुमारको मारकर सारे राक्षसोंका संहार कर डाला॥

हनुमानजी का मेघनाद से युद्ध

चौपाई

सुनि सुत बध लंकेस रिसाना। पठएसि मेघनाद बलवाना॥
मारसि जनि सुत बाँधेसु ताही। देखिअ कपिहि कहाँ कर आही॥

रावण राक्षसोंके मुखसे अपने पुत्रका वध सुनकर बड़ा गुस्सा हुआ और महाबली मेघनादको भेजा॥ और मेघनादसे कहा कि हे पुत्र! उसे मारना मत किंतु बांधकर पकड़ लें आना, क्योंकि मैभी उसे देखूं तो सही बह वानर कहाँ का है॥

चला इंद्रजित अतुलित जोधा। बंधु निधन सुनि उपजा क्रोधा॥
कपि देखा दारुन भट आवा। कटकटाइ गर्जा अरु धावा॥

इन्द्रजीत (इंद्र को जीतनेवाला) असंख्य योद्धाओ को संग लेकर चला। भाई के वध का समाचार सुनकर उसे बड़ा गुस्सा आया॥ हनुमानजी ने उसे देखकर यह कोई दारुण भट (भयानक योद्धा) आता है ऐसे जानकार कटकटाके महाघोर गर्जना की और दौड़े॥

अति बिसाल तरु एक उपारा। बिरथ कीन्ह लंकेस कुमारा॥
रहे महाभट ताके संगा। गहि गहि कपि मर्दई निज अंगा॥

एक बड़ा भारी वृक्ष उखाड़ कर उससे मेघनादको विरथ अर्थात रथहीन कर दिया॥ उसके साथ जो बड़े बड़े महाबली योद्धा थे, उन सबको पकड़ पकड़कर हनुमानजी अपने शरीर से मसल डाला॥

तिन्हहि निपाति ताहि सन बाजा। भिरे जुगल मानहुँ गजराजा॥
मुठिका मारि चढ़ा तरु जाई। ताहि एक छन मुरुछा आई॥

ऐसे उन राक्षसोंको मारकर हनुमानजी मेघनादके पास पहुँचे। फिर वे दोनों ऐसे भिड़े कि मानो दो गजराज आपस में भीड़ रहे है॥ हनुमान मेघनादको एक घूँसा मारकर वृक्ष पर जा चढ़े और मेघनादको उस प्रहार से एक क्षणभर के लिए मूर्च्छा आगयी।

उठि बहोरि कीन्हिसि बहु माया। जीति न जाइ प्रभंजन जाया॥
फिर मेघनादने सचेत होकर अनेक मायाये फैलायी पर हनुमानजी किसी प्रकार जीते नहीं गए॥

मेघनादने ब्रम्हास्त्र चलाया

दोहा

ब्रह्म अस्त्र तेहि साँधा कपि मन कीन्ह बिचार। जौं न ब्रह्मसर मानउँ महिमा मिटइ अपार ॥19॥

मेघनाद अनेक अस्त्र चलाकर थक गया, तब उसने ब्रम्हास्त्र चलाया। उसे देखकर हनुमानजी ने मनमे विचार किया कि इससे बंध जाना ही ठीक है। क्योंकि जो मै इस ब्रम्हास्त्रको नहीं मानूंगा तो इस अस्त्रकी अद्‌भुत महिमा घट जायेगी ॥19॥

मेघनाद हनुमानजी को बंदी बनाकर रावणकी सभा में ले गया

चौपाई

ब्रह्मबान कपि कहुँ तेहिं मारा। परतिहुँ बार कटकु संघारा॥
तेहिं देखा कपि मुरुछित भयऊ। नागपास बाँधेसि लै गयऊ॥

मेघनादने हनुमानजीपर ब्रम्हास्त्र चलाया, उस ब्रम्हास्त्रसे हनुमानजी गिरने लगे तो गिरते समय भी उन्होंने अपने शरीरसे बहुतसे राक्षसोंका संहार कर डाला॥ जब मेघनादने जान लिया कि हनुमानजी अचेत हो गए है, तब वह उन्हें नागपाशसे बांधकर लंकामे ले गया॥

जासु नाम जपि सुनहु भवानी। भव बंधन काटहिं नर ग्यानी॥
तासु दूत कि बंध तरु आवा। प्रभु कारज लगि कपिहिं बँधावा॥

महादेवजी कहते है कि हे पार्वती! सुनो, जिनके नामका जप करनेसे ज्ञानी लोग भवबंधन को काट देते है॥ उस प्रभुका दूत (हनुमानजी) भला बंधन में कैसे आ सकता है? परंतु अपने प्रभुके कार्यके लिए हनुमानने अपनेको बंधा दिया॥

कपि बंधन सुनि निसिचर धाए। कौतुक लागि सभाँ सब आए॥
दसमुख सभा दीखि कपि जाई। कहि न जाइ कछु अति प्रभुताई॥

हनुमानजी को बंधा हुआ सुनकर सब राक्षस देखनेको दौड़े और कौतुकके लिए उसे सभामे ले आये॥ हनुमानजी ने जाकर रावण की सभा देखी, तो उसकी प्रभुता और ऐश्वर्य किसी कदर कही जाय ऐसी नहीं थी॥

कर जोरें सुर दिसिप बिनीता। भृकुटि बिलोकत सकल सभीता॥
देखि प्रताप न कपि मन संका। जिमि अहिगन महुँ गरुड़ असंका॥

कारण यह है की, तमाम देवता बड़े विनय के साथ हाथ जोड़े सामने खड़े उसकी भ्रुकुटीकी ओर भयसहित देख रहे है॥ यद्यपि हनुमानजी ने उसका ऐसा प्रताप देखा, परंतु उनके मन में ज़रा भी डर नहीं था। हनुमानजी उस सभामें राक्षसोंके बीच ऐसे निडर खड़े थे कि जैसे गरुड़ सर्पोंके बीच निडर रहा करता है॥

दोहा

कपिहि बिलोकि दसानन बिहसा कहि दुर्बाद। सुत बध सुरति कीन्हि पुनि उपजा हृदयँ बिसाद ॥20॥

रावण हनुमानजी की और देखकर हँसा और कुछ दुर्वचन भी कहे, परंतु फिर उसे पुत्रका मरण याद आजानेसे उसके हृदयमे बड़ा संताप पैदा हुआ॥

हनुमानजी और रावण का संवाद

चौपाई

कह लंकेस कवन तैं कीसा। केहि कें बल घालेहि बन खीसा॥
की धौं श्रवन सुनेहि नहिं मोही। देखउँ अति असंक सठ तोही॥

रावण ने हनुमानजी से कहा कि हे वानर! तू कहांसे आया है? और तूने किसके बल से मेरे वनका विध्वंस कर दिया है॥ मैं तुझे अत्यंत निडर देख रहा हूँ सो क्या तूने कभी मेरा नाम अपने कानों से नहीं सुना है?॥

मारे निसिचर केहिं अपराधा। कहु सठ तोहि न प्रान कइ बाधा॥
सुनु रावन ब्रह्मांड निकाया। पाइ जासु बल बिरचति माया॥

तुझको हम जीसे नहीं मारेंगे, परन्तु सच कह दे कि तूने हमारे राक्षसोंको किस अपराध के लिए मारा है? रावणके ये वचन सुनकर हनुमानजीने रावण से कहा कि हे रावण! सुन, यह माया (प्रकृति) जिस परमात्माके बल (चैतन्यशक्ति) को पाकर अनेक ब्रम्हांडसमूह रचती है॥

जाकें बल बिरंचि हरि ईसा। पालत सृजत हरत दससीसा॥
जा बल सीस धरत सहसानन। अंडकोस समेत गिरि कानन॥

हे रावण! जिसके बलसे ब्रह्मा, विष्णु और महेश ये तीनो देव जगतको रचते है, पालते है और संहार करते है॥ और जिनकी सामर्थ्यसे शेषजी अपने शिरसे वन और पर्वतोंसहित इस सारे ब्रम्हांडको धारण करते है॥

धरइ जो बिबिध देह सुरत्राता। तुम्ह से सठन्ह सिखावनु दाता॥
हर कोदंड कठिन जेहिं भंजा। तेहि समेत नृप दल मद गंजा॥

और जो देवताओके रक्षा के लिए और तुम्हारे जैसे दुष्टोको दंड देनेके लिए अनेक शरीर (अवतार) धारण करते है॥ जिसने महादेवजीके अति कठिन धनुषको तोड़कर तेरे साथ तमाम राजसमूहोके मदको भंजन किया (गर्व चूर्ण कर दिया) है॥

खर दूषन त्रिसिरा अरु बाली। बधे सकल अतुलित बलसाली॥

और जिसने खर, दूषण, त्रिशिरा और बालि ऐसे बड़े बलवाले योद्धओको मारा है॥

दोहा

जाके बल लवलेस तें जितेहु चराचर झारि। तास दूत मैं जा करि हरि आनेहु प्रिय नारि ॥21॥

और हे रावण! सुन, जिसके बलके लवलेश अर्थात किन्चित्मात्र अंश से तूने तमाम चराचर जगत को जीता है, उस परमात्मा का मै दूत हूँ। जिसकी प्यारी सीता को तू हर ले आया है ॥21॥

हनुमानजी और रावण का संवाद

चौपाई

जानउँ मैं तुम्हारि प्रभुताई। सहसबाहु सन परी लराई॥
समर बालि सन करि जसु पावा। सुनि कपि बचन बिहसि बिहरावा॥

हे रावण! आपकी प्रभुता तो मैंने तभीसे जान ली है कि जब आपको सहस्रबाहुके साथ युद्ध करनेका काम पड़ा था॥ और मुझको यह बातभी याद है कि आप बालिसे लड़ कर जो यश पाये थे। हनुमानजी के ये वचन सुनकर रावण ने हँसी में ही उड़ा दिए॥

खायउँ फल प्रभु लागी भूँखा। कपि सुभाव तें तोरेउँ रूखा॥
सब कें देह परम प्रिय स्वामी। मारहिं मोहि कुमारग गामी॥

तब फिर हनुमानजी ने कहा कि हे रावण! मुझको भूख लग गयी थी इसलिए तो मैंने आपके बाग़ के फल खाए है और जो वृक्षोको तोडा है सो तो केवल मैंने अपने वानर स्वाभावकी चपलतासे तोड़ डाले है॥ और जो मैंने आपके राक्षसोंको मारा उसका कारण तो यह है की हे रावण! अपना देह तो सबको बहुत प्यारा लगता है, सो वे खोटे रास्ते चलने वाले राक्षस मुझको मारने लगे॥

जिन्ह मोहि मारा ते मैं मारे। तेहि पर बाँधेउँ तनयँ तुम्हारे॥
मोहि न कछु बाँधे कइ लाजा। कीन्ह चहउँ निज प्रभु कर काजा॥

तब मैंने अपने प्यारे शरीरकी रक्षा करनेके लिए जिन्होंने मुझको मारा था उनको मैंने भी मारा। इसपर आपके पुत्र ने मुझको बाँध लिया है॥ हनुमानजी कहते है कि मुझको बंध जाने से कुछ भी शर्म नहीं आती क्योंकि मै अपने स्वामीका कार्य करना चाहता हूँ॥

बिनती करउँ जोरि कर रावन। सुनहु मान तजि मोर सिखावन॥
देखहु तुम्ह निज कुलहि बिचारी। भ्रम तजि भजहु भगत भय हारी॥

हे रावण! मै हाथ जोड़कर आपसे प्रार्थना करता हूँ। सो अभिमान छोड़कर मेरी शिक्षा सुनो। और अपने मनमे विचार करके तुम अपने आप खूब अच्छीतरह देखलो और सोचनेके बाद भ्रम छोड़कर भक्तजनोंके भय मिटानेवाले प्रभुकी सेवा करो॥

जाकें डर अति काल डेराई। जो सुर असुर चराचर खाई॥
तासों बयरु कबहुँ नहिं कीजै। मोरे कहें जानकी दीजै॥

हे रावण! काल भी जो देवता, दैत्य और सारे चराचरको खा जाता है वह भी जिसके सामने अत्यंत भयभीत रहता है॥ उस परमात्मासे कभी बैर नहीं करना चाहिये। इसलिए जो तू मेरा कहना माने तो सीताजीको रामचन्द्रजीको दे दो॥

दोहा

प्रनतपाल रघुनायक करुना सिंधु खरारि। गएँ सरन प्रभु राखिहैं तव अपराध बिसारि ॥22॥

हे रावण! खरके मारनेवाले रघुवंशमणि रामचन्द्रजी भक्तपालक और करुणाके सागर है। इसलिए यदि तू उनकी शरण चला जाएगा तो वे प्रभु तेरे अपराधको माफ़ करके तेरी रक्षा करेंगे ॥22॥

हनुमानजी का रावण को समझाना

चौपाई

राम चरन पंकज उर धरहू। लंका अचल राजु तुम्ह करहू॥
रिषि पुलस्ति जसु बिमल मयंका। तेहि ससि महुँ जनि होहु कलंका॥

इसलिए तू रामचन्द्रजीके चरणकमलोंको हृदयमें धारण कर और उनकी कृपासे लंकामें अविचल राज कर॥ महामुनि पुलस्त्यजीका यश निर्मल चन्द्रमाके समान परम उज्वल है इसलिए तू उस कुलके बीचमें कलंक के समान मत हो॥

राम नाम बिनु गिरा न सोहा। देखु बिचारि त्यागि मद मोहा॥
बसन हीन नहिं सोह सुरारी। सब भूषन भूषित बर नारी॥

हे रावण! तू अपने मनमें विचार करके मद और मोहको त्यागकर अच्छी तरह जांचले कि रामके नाम बिना वाणी कभी शोभा नहीं देती॥ हे रावण! चाहे स्त्री सब अलंकारोसे अलंकृत और सुन्दर क्यों न होवे परंतु वस्त्रके बिना वह कभी शोभायमान नहीं होती। ऐसेही रामनाम बिना वाणी शोभायमान नहीं होती॥

राम बिमुख संपति प्रभुताई। जाइ रही पाई बिनु पाई॥
सजल मूल जिन्ह सरितन्ह नाहीं। बरषि गएँ पुनि तबहिं सुखाहीं॥

हे रावण! जो पुरुष रामचन्द्रजीसे विमुख है उसकी संपदा और प्रभुता पानेपर भी न पानेके बराबर है। क्योंकि वह स्थिर नहीं रहती किन्तु तुरंत चली जाती है॥ देखो, जिन नदियों के मूल में कोई जलस्रोत नहीं है वहां बरसात हो जाने के बाद फिर सब जल सुख ही जाता है, कही नहीं रहता॥

सुनु दसकंठ कहउँ पन रोपी। बिमुख राम त्राता नहिं कोपी॥
संकर सहस बिष्नु अज तोही। सकहिं न राखि राम कर द्रोही॥

हे रावण! सुन, मै प्रतिज्ञा कर कहता हूँ कि रामचन्द्रजीसे विमुख पुरुषका रखवारा कोई नहीं है॥ हे रावण! रामचन्द्रजीसे द्रोह करनेवाले तुझको ब्रह्मा, विष्णु और महादेव भी बचा नहीं सकते॥

दोहा

मोहमूल बहु सूल प्रद त्यागहु तम अभिमान। भजहु राम रघुनायक कृपा सिंधु भगवान ॥23॥
हे रावण! मोह्का मूल कारण और अत्यंत दुःख देनेवाली अभिमानकी बुद्धिको छोड़कर कृपाके सागर भगवान् श्री रघुवीरकुलनायक रामचन्द्रजीकी सेवा कर ॥23॥

रावण ने हनुमानजी की पूँछ जलाने का हुक्म दिया

चौपाई

जदपि कही कपि अति हित बानी। भगति बिबेक बिरति नय सानी॥
बोला बिहसि महा अभिमानी। मिला हमहि कपि गुर बड़ ग्यानी॥

यद्यपि हनुमानजी रावणको अति हितकारी और भक्ति, ज्ञान, धर्म और नीतिसे भरी वाणी कही परंतु उस अभिमानी अधमके उसके कुछभी असर नहीं हुआ॥ इससे हँसकर बोला कि हे वानर! आज तो हमको तु बडा ज्ञानी गुरु मिला॥

मृत्यु निकट आई खल तोही। लागेसि अधम सिखावन मोही॥
उलटा होइहि कह हनुमाना। मतिभ्रम तोर प्रगट मैं जाना॥

हे नीच! तू मुझको शिक्षा देने लगा है सो हे दुष्ट! कहीं तेरी मौत तो निकट नहीं आगयी है?॥ रावणके ये वचन सुन पीछे फिरकर हनुमान्ने कहा कि हे रावण! अब मैंने तेरा बुद्धिभ्रम स्पष्ट रीतिसे जान लिया है॥

सुनि कपि बचन बहुत खिसिआना। बेगि न हरहु मूढ़ कर प्राना॥
सुनत निसाचर मारन धाए। सचिवन्ह सहित बिभीषनु आए॥

हनुमान्के वचन सुनकर रावणको बड़ा कोध आया, जिससे रावणने राक्षसोंको कहा कि हे राक्षसो! इस मूर्खके प्राण जल्दी लेलो अर्थात इसे तुरंत मार डालो॥ इस प्रकार रावण के वचन सुनतेही राक्षस मारनेको दौड़ें तब अपने मंत्रियोंके साथ विभीषण वहां आ पहुँचे॥

नाइ सीस करि बिनय बहूता। नीति बिरोध न मारिअ दूता॥
आन दंड कछु करिअ गोसाँई। सबहीं कहा मंत्र भल भाई॥

बहे विनयके साथ रावणको प्रणाम करके बिभीषणने कहा कि यह दूत (वकील) है। इसलिए इसे मारना नही चाहिये; क्योंकि यह बात नीतिसे विरुद्ध है॥ हे स्वामी! इसे आप और हरएक दंड दे दीजिये पर मारें मत। बिभीषणकी यह बात सुनकर सब राक्षसोंने कहा कि हे भाइयो! यह सलाह तो अच्छी है॥

सुनत बिहसि बोला दसकंधर। अंग भंग करि पठइअ बंदर॥

रावण इस बातको सुनकर बोला कि जो इसको मारना ठीक नहीं है तो इस बंदरका कोई अंग भंग करके इसे भेजदो॥

दोहा

कपि कें ममता पूँछ पर सबहि कहउँ समुझाइ। तेल बोरि पट बाँधि पुनि पावक देहु लगाइ ॥24॥

सब लोगोने समझा कर रावणसे कहा कि वानरका ममत्व पुछ पर बहुत होता है। इसलिए इसकी पूंछमें तेलसे भीगेहुए कपडे लपेटकर आग लगा दो ॥24॥

राक्षसोंने हनुमानजी की पूँछ में आग लगा दी

चौपाई

पूँछहीन बानर तहँ जाइहि। तब सठ निज नाथहि लइ आइहि॥
जिन्ह कै कीन्हिसि बहुत बड़ाई। देखउ मैं तिन्ह कै प्रभुताई॥

जब यह वानर पूंछहीन होकर अपने मालिकके पास जायगा तब अपने स्वामीको यह ले आएगा॥ इस वानरने जिसकी अतुलित बडाई की है भला उसकी प्रभुताको मैं देखूं तो सही कि वह कैसा है?॥

बचन सुनत कपि मन मुसुकाना। भइ सहाय सारद मैं जाना॥
जातुधान सुनि रावन बचना। लागे रचैं मूढ़ सोइ रचना॥

रावनके ये वचन सुनकर हनुमानजी मनमें मुसकुराए और मनमें सोचने लगे कि मैंने जान लिया है कि इस समय सरस्वती सहाय हुई है। क्योंकि इसके मुंहसे रामचन्द्रजीके आनेका समाचार स्वयं निकल गया॥ तुलसीदासजी कहते है कि वे राक्षसलोग रावणके वचन सुनकर वही रचना करने लगे अर्थात तेलसे भिगो भिगोकर कपडे उनकी पूंछमें लपेटने लगे॥

रहा न नगर बसन घृत तेला। बाढ़ी पूँछ कीन्ह कपि खेला॥
कौतुक कहँ आए पुरबासी। मारहिं चरन करहिं बहु हाँसी॥

उस समय हनुमानजीने ऐसा खेल किया कि अपनी पूंछ इतनी लंबी बड़ा दी जिसको लपेटनेकेलिये नगरीमें कपडा, घी व तेल कुछभी बाकी न रहा॥ नगरके जो लोग तमाशा देखनेको वहां आये थे वे सब लातें मार मारकर बहुत हँसते हैं॥

बाजहिं ढोल देहिं सब तारी। नगर फेरि पुनि पूँछ प्रजारी॥
पावक जरत देखि हनुमंता। भयउ परम लघुरूप तुरंता॥

अनेक ढोल बज रहे हे, सबलोग ताली दे रहे हैं, इस तरह हनुमानजीको नगरीमें सर्वत्र फिराकर फिर उनकी पूंछमें आग लगा दी॥ हनुमानजीने जब पूंछमें आग जलती देखी तब उन्होने तुरंत बहुत छोटा स्वरूप धारण कर लिया॥

निबुकि चढ़ेउ कप कनक अटारीं। भईं सभीत निसाचर नारीं॥

और बंधन से निकलकर पीछे सुवर्णकी अटारियोंपर चढ़ गए, जिसको देखतेही तमाम राक्षसोंकी स्त्रीयां भयभीत होगयी॥

दोहा

हरि प्रेरित तेहि अवसर चले मरुत उनचास। अट्टहास करि गर्जा कपि बढ़ि लाग अकास ॥25॥

उस समय भगवानकी प्रेरणासे उनचासो पवन बहने लगे और हनुमानजीने अपना स्वरूप ऐसा बढ़ाया कि वह आकाशमें जा लगा फिर अट्टहास करके बड़े जोरसे गरजे ॥25॥

हनुमानजी ने लंका जलाई

चौपाई

देह बिसाल परम हरुआई। मंदिर तें मंदिर चढ़ धाई॥
जरइ नगर भा लोग बिहाला। झपट लपट बहु कोटि कराला॥

यद्यपि हनुमानजीका शरीर बहुत बड़ा था परंतु शरीरमें बड़ी फुर्ती थी जिससे वह एक घरसे दूसरे घरपर चढ़ते चले जाते थे॥ जिससे तमाम नगर जल गया। लोग सब बेहाल हो गये और झपट कर बहुतसे विकराल कोटपर चढ़ गये॥

तात मातु हा सुनिअ पुकारा। एहिं अवसर को हमहि उबारा॥
हम जो कहा यह कपि नहिं होई। बानर रूप धरें सुर कोई॥

और सबलोग पुकारने लगे कि हे तात! हे माता! अब इस समयमें हमें कौन बचाएगा॥ हमने जो कहा था कि यह वानर नहीं है, कोई देव वानरका रूप धरकर आया है। सो देख लीजिये यह बात ऐसीही है॥

साधु अवग्या कर फलु ऐसा। जरइ नगर अनाथ कर जैसा॥
जारा नगरु निमिष एक माहीं। एक बिभीषन कर गृह नाहीं॥

और यह नगर जो अनाथके नगरके समान जला है सो तो साधुपुरुषोंका अपमान करनेंका फल ऐसाही हुआ करता है॥ तुलसीदासजी कहते हैं कि हनुमानजीने एक क्षणभरमें तमाम नगरको जला दिया. केवल एक बिभीषणके घरको नहीं जलाया॥

ता कर दूत अनल जेहिं सिरिजा। जरा न सो तेहि कारन गिरिजा॥
उलटि पलटि लंका सब जारी। कूदि परा पुनि सिंधु मझारी॥

महादेवजी कहते है कि हे पार्वती! जिसने इस अग्निको पैदा किया है उस परमेश्वरका बिभीषण भक्त था इस कारण से उसका घर नहीं जला॥ हनुमानजी ने उलट पलट कर (एक ओर से दूसरी ओर तक) तमाम लंकाको जला कर फिर समुद्रके अंदर कूद पडे॥

दोहा

पूँछ बुझाइ खोइ श्रम धरि लघु रूप बहोरि। जनकसुता कें आगें ठाढ़ भयउ कर जोरि ॥26॥

अपनी पूछको बुझाकर, श्रमको मिटाकर (थकावट दूर करके), फिरसे छोटा स्वरूप धारण करके हनुमानजी हाथ जोड़कर सीताजीके आगे आ खडे हुए ॥26॥

हनुमानजी लंकासे लौटने से पहले सीताजी से मिले

चौपाई

मातु मोहि दीजे कछु चीन्हा। जैसें रघुनायक मोहि दीन्हा॥
चूड़ामनि उतारि तब दयऊ। हरष समेत पवनसुत लयऊ॥

और बोले कि हे माता! जैसे रामचन्द्रजीने मुझको पहचानके लिये मुद्रिकाका निशान दिया था, वैसे ही आपभी मुझको कुछ चिन्ह दो॥ तब सीताजीने अपने शिरसे उतार कर चूडामणि दिया। हनुमानजीने बड़े आनंदके साथ वह ले लिया॥

कहेहु तात अस मोर प्रनामा। सब प्रकार प्रभु पूरनकामा॥
दीन दयाल बिरिदु संभारी। हरहु नाथ सम संकट भारी॥

सीताजीने हनुमानजीसे कहा कि है पुत्र! मेरा प्रणाम कह कर प्रभुसे ऐसे कहना कि हे प्रभु! यद्यपि आप सर्व प्रकारसे पूर्णकाम हो (आपको किसी प्रकार की कामना नहीं है)॥ हे नाथ! आप दीनदयाल हो, इसलिये अपने विरदको सँभाल कर (दीन दुःखियों पर दया करना आपका विरद है, सो उस विरद को याद करके) मेरे इस महासंकटको दूर करो॥

तात सक्रसुत कथा सनाएहु। बान प्रताप प्रभुहि समुझाएहु॥
मास दिवस महुँ नाथु न आवा। तौ पुनि मोहि जिअत नहिं पावा॥

हे पुत्र । फिर इन्द्रके पुत्र जयंतकी कथा सुनाकर प्रभुकों बाणोंका प्रताप समझाकर याद दिलाना॥ और कहना कि हे नाथ! जो आप एक महीनेके अन्दर नहीं पधारोग तो फिर आप मुझको जीती नहीं पाएँगे॥

कहु कपि केहि बिधि राखौं प्राना। तुम्हहू तात कहत अब जाना॥
तोहि देखि सीतलि भइ छाती। पुनि मो कहुँ सोइ दिनु सो राती॥

हे तात! कहना, अब मैं अपने प्राणोंको किस प्रकार रखूँ? क्योंकि तुमभी अब जाने को कह रहे हो॥ तुमको देखकर मेरी छाती ठंढी हुई थी परंतु अब तो फिर मेरेलिए वही दिन हैं और वही रातें हैं॥

दोहा

जनकसुतहि समुझाइ करि बहु बिधि धीरजु दीन्ह। चरन कमल सिरु नाइ कपि गवनु राम पहिं कीन्ह ॥27॥

हनुमानजीने सीताजीको (जानकी को) अनेक प्रकारसे समझाकर कई तरहसे धीरज दिया और फिर उनके चरणकमलोंमें शिर नमाकर वहांसे रामचन्द्रजीके पास रवाना हुए ॥27॥

हनुमानजीका लंका से वापिस लौटना

चौपाई

चलत महाधुनि गर्जेसि भारी। गर्भ स्रवहिं सुनि निसिचर नारी॥
नाघि सिंधु एहि पारहि आवा। सबद किलिकिला कपिन्ह सुनावा॥

जाते समय हनुमानजीने ऐसी भारी गर्जना की, कि जिसको सुनकर राक्षसियोंके गर्भ गिर गये॥ सपुद्रको लांघकर हनुमानजी समुद्रके इस पार आए। और उस समय उन्होंने किलकिला शब्द (हर्षध्वनि) सब बन्दरोंको सुनाया॥

(राका दिन पहूँचेउ हनुमन्ता। धाय धाय कापी मिले तुरन्ता॥

हनुमानजीने लंकासे लौटकर कार्तिककी पूर्णिमाके दिन वहां पहुंचे। उस समय दौड़ दौड़ कर वानर बडी त्वराके साथ हनुमानजीसे मिले॥)

हरषे सब बिलोकि हनुमाना। नूतन जन्म कपिन्ह तब जाना॥
मुख प्रसन्न तन तेज बिराजा। कीन्हेसि रामचंद्र कर काजा॥

हनुमानजीको देखकर सब वानर बहुत प्रसन्न हए और उस समय वानरोंने अपना नया जन्म समझा॥ हुनमानजीका मुख अति प्रसन्न और शरीर तेजसे अत्यंत देदीप्यमान देखकर वानरोंने जान लिया कि हनुमानजी रामचन्द्रजीका कार्य करके आए है॥

मिले सकल अति भए सुखारी। तलफत मीन पाव जिमि बारी॥
चले हरषि रघुनायक पासा। पूँछत कहत नवल इतिहासा॥

और इसीसे सब वानर परम प्रेमके साथ हनुमानजीसे मिले और अत्यन्त प्रसन्न हुए। वे कैसे प्रसन्न हुए सो कहते हैं कि मानो तड़पती हुई मछलीको पानी मिल गया॥ फिर वे सब सुन्दर इतिहास पूंछतेहुए आर कहतेहुए आनंदके साथ रामचन्द्रजीके पास चले॥

तब मधुबन भीतर सब आए। अंगद संमत मधु फल खाए॥
रखवारे जब बरजन लागे। मुष्टि प्रहार हनत सब भागे॥

फिर उन सबोंने मधुवनके अन्दर आकर युवराज अंगदके साथ वहां मीठे फल खाये॥ जब वहांके पहरेदार बरजने लगे तब उनको मुक्कोसे ऐसा मारा कि वे सब वहांसे भाग गये॥

दोहा

जाइ पुकारे ते सब बन उजार जुबराज। सुनि सुग्रीव हरष कपि करि आए प्रभु काज ॥28॥

वहांसे जो वानर भाग कर बचे थे उन सबोंने जाकर राजा सुग्रीवसे कहा कि हे राजा! युवराज अंगदने वनका सत्यानाश कर दिया है। यह समाचार सुनकर सुग्रीवको बड़ा आनंद आया कि वे लोग प्रभुका काम करके आए हैं ॥28॥

हनुमानजी सुग्रीव से मिले

चौपाई

जौं न होति सीता सुधि पाई। मधुबन के फल सकहिं कि खाई॥
एहि बिधि मन बिचार कर राजा। आइ गए कपि सहित समाजा॥

सुग्रीवको आनंद क्यों हुआ? उसका कारण कहते हैं। सुग्रीवने मनमें विचार किया कि जो उनको सीताजीकी खबर नहीं मिली होती तो वे लोग मधुवनके फल कदापि नहीं खाते॥ राजा सुग्रीव इस तरह मनमें विचार कर रहे थे। इतनेमें समाजके साथ वे तमाम वानर बहां चले आये॥

आइ सबन्हि नावा पद सीसा। मिलेउ सबन्हि अति प्रेम कपीसा॥
पूँछी कुसल कुसल पद देखी। राम कृपाँ भा काजु बिसेषी॥

(सबने आकर सुग्रीव के चरणों में सिर नवाया। और आकर उन सभीने नमस्कार किया तब बड़े प्यारके साथ सुग्रीव उन सबसे मिले॥ सुग्रीवने सभीसे कुशल पूंछा तब उन्होंने कहा कि नाथ! आपके चरण कुशल देखकर हम कुशल हैं और जो यह काम बना है सो केवल रामचन्द्रजीकी कृपासे बना है॥

नाथ काजु कीन्हेउ हनुमाना। राखे सकल कपिन्ह के प्राना॥
सुनि सुग्रीव बहुरि तेहि मिलेऊ। कपिन्ह सहित रघुपति पहिं चलेऊ॥

हे नाथ! यह काम हनुमानजीने किया है। यह काम क्या किया है मानो सब वानरोंके इसने प्राण बचा लिये हैं॥ यह बात सुनकर सुग्रीव उठकर फिर हनुमानजीसे मिले और वानरोंके साथ रामचन्द्रजीके पास आए॥

राम कपिन्ह जब आवत देखा। किएँ काजु मन हरष बिसेषा॥
फटिक सिला बैठे द्वौ भाई। परे सकल कपि चरनन्हि जाई॥

वानरोंको आते देखकर रामचन्द्रजीके मनमें बड़ा आनन्द हुआ कि ये लोग काम सिद्ध करके आ गये हैं॥ राम और लक्ष्मण ये दोनों भाई स्फटिकमणिकी शिलापर बैठे हुए थे। वहां जाकर सब वानर दोनों भाइयोंके चरणोंमें गिरे॥

दोहा

प्रीति सहित सब भेंटे रघुपति करुना पुंज॥ पूछी कुसल नाथ अब कुसल देखि पद कंज ॥29॥

करुणानिधान श्रीरामचन्द्रजी प्रीतिपूर्वक सब वानरोंसे मिले और उनसे कुशल पूँछा. तब उन्होंने कहा कि हे नाथ! आपके चरणकमलोंको कुशल देखकर (चरणकमलोंके दर्शन पाने से) अब हम कुशल हें ॥29॥

हनुमानजी और सुग्रीव रामचन्द्रजी से मिले

चौपाई

जामवंत कह सुनु रघुराया। जा पर नाथ करहु तुम्ह दाया॥
ताहि सदा सुभ कुसल निरंतर। सुर नर मुनि प्रसन्न ता ऊपर॥

उस समय जाम्बवान रामचन्द्रजीसे कहा कि हे नाथ! सुनो, आप जिसपर दया करते हो॥ उसके सदा सर्वदा शुभ और कुशल निरंतर रहते हें। तथा देवता मनुष्य और मुनि सभी उसपर सदा प्रसन्न रहते हैं॥

सोइ बिजई बिनई गुन सागर। तासु सुजसु त्रैलोक उजागर॥
प्रभु कीं कृपा भयउ सबु काजू। जन्म हमार सुफल भा आजू॥

और वही विजयी (विजय करनेवाला), विनयी (विनयवाला) और गुणोंका समुद्र होता है और उसकी सुख्याति तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध रहती है॥ यह सब काम आपकी कृपासे सिद्ध हुआ हैं। और हमारा जन्म भी आजही सफल हुआ है॥

नाथ पवनसुत कीन्हि जो करनी। सहसहुँ मुख न जाइ सो बरनी॥ (जो मुख लाखहु जाइ न बरणी॥)
पवनतनय के चरित सुहाए। जामवंत रघुपतिहि सुनाए॥

दे नाथ! पवनपुत्र हनुमानजीने जो काम किया है उसका हजार मुखों से भी वर्णन नहीं किया जा सकता (वह कोई आदमी जो लाख मुखोंसे कहना चाहे तो भी वह कहा नहीं जा सकता)॥ हनुमानजीकी प्रशंसाके वचन और कार्य जाम्बवानने रामचन्द्रजीको सुनाये॥

सुनत कृपानिधि मन अति भाए। पुनि हनुमान हरषि हियँ लाए॥
कहहु तात केहि भाँति जानकी। रहति करति रच्छा स्वप्रान की॥

उन वचनोंको सुनकर दयालु श्रीरामचन्द्रजीने उठकर हनुमानजीको अपनी छातीसे लगाया॥ और श्रीरामने हनुमानजीसे पूछा कि हे तात! कहो, सीता किस तरह रहती है? और अपने प्राणोंकी रक्षा वह किस तरह करती है?॥

दोहा

नाम पाहरू दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद जंत्रित जाहिं प्रान केहिं बाट ॥30॥

हनुमानजीने कहा कि हे नाथ । यद्यपि सीताजीको कष्ट तो इतना है कि उनके प्राण एक क्षणभर न रह। परंतु सीताजीने आपके दर्शनके लिए प्राणोंको ऐसा बंदोबस्त करके रखा है कि रात दिन अखंड पहरा देनेके वास्ते आपके नामको तो उसने सिपाही बना रखा है (आपका नाम रात-दिन पहरा देनेवाला है)। और आपके ध्यानको कपाट वनाया है (आपका ध्यान ही किवाड़ है)। और अपने नीचे किये हुए नेत्रोंसे जो अपने चरणकी ओर निहारती है वह यंत्रिका अर्थात् ताला है. अब उसके प्राण किस रास्ते बाहर निकलें ॥30॥

हनुमानजी ने श्रीराम को सीताजी का सन्देश दिया

चौपाई

चलत मोहि चूड़ामनि दीन्ही। रघुपति हृदयँ लाइ सोइ लीन्ही॥
नाथ जुगल लोचन भरि बारी। बचन कहे कछु जनककुमारी॥

और चलते समय मुझको यह चूड़ामणि दिया हे. ऐसे कह कर हनुमानजीने वह चूड़ामणि रामचन्द्रजीको दे दिया। तब रामचन्द्रजीने उस रत्नको लेकर अपनी छातीसे लगाया॥ तब हनुमानजीने कहा कि हे नाथ! दोनो हाथ जोड़कर नेत्रोंमें जल लाकर सीताजीने कुछ वचनभी कहे है सो सुनिये॥

अनुज समेत गहेहु प्रभु चरना। दीन बंधु प्रनतारति हरना॥
मन क्रम बचन चरन अनुरागी। केहिं अपराध नाथ हौं त्यागी॥

सीताजीने कहा है कि लक्ष्मणजीके साथ प्रभुके चरण धरकर मेरी ओरसे ऐसी प्रार्थना करना कि हे नाथ! आप तो दीनबंधु और शरणागतोके संकटको मिटानेवाले हो॥ फिर मन, वचन और कर्मसे चरणोमें प्रीति रखनेवाली मुझ दासीको आपन किस अपराधसे त्याग दिया है॥

अवगुन एक मोर मैं माना। बिछुरत प्रान न कीन्ह पयाना॥
नाथ सो नयनन्हि को अपराधा। निसरत प्रान करहिं हठि बाधा॥

हाँ, मेरा एक अपराध पक्का (अवश्य) हैं और वह मैंने जान भी लिया है कि आपसे बिछुरतेही (वियोग होते ही) मेरे प्राण नही निकल गये॥ परंतु हें नाथ! वह अपराध मेरा नहीं है किन्तु नेत्रोका है; क्योंकि जिस समय प्राण निकलने लगते है उस समय ये नेत्र हटकर उसमें बाधा कर देते हैं (अर्थात् केवल आपके दर्शनके लोभसे मेरे प्राण बने रहे हैं)॥

बिरह अगिनि तनु तूल समीरा। स्वास जरइ छन माहिं सरीरा॥
नयन स्रवहिं जलु निज हित लागी। जरैं न पाव देह बिरहागी॥

हे प्रभु! आपका विरह तो अग्नि है मेरा शरीर तूल (रुई) है। श्वास प्रबल वायु है। अब इस सामग्रीके रहते शरीर क्षणभरमें जल जाय इसमें कोई आश्चर्य नहीं॥ परंतु नेत्र अपने हितके लिए अर्थात् दर्शनके वास्ते जल बहा बहा कर उस विरह की आग को शांत करते हैं, इससे विरह की आग भी मेर शरीरको जला नहीं पाती॥

सीता कै अति बिपति बिसाला। बिनहिं कहें भलि दीनदयाला॥
हनुमानजी ने कहा कि हे दीनदयाल! सीताकी विपत्ति ऐसी भारी है कि उसको न कहना ही अच्छा है॥

दोहा

निमिष निमिष करुनानिधि जाहिं कलप सम बीति। बेगि चलिअ प्रभु आनिअ भुज बल खल दल जीति ॥31॥

हे करुणानिधान! हे प्रभु! सीताजीके एक एक क्षण, सौ सौ कल्पके समान व्यतीत होते हैं। इसलिए जल्दी चलकर और अपने बाहुबलसे दुष्टोंके दलको जीतकर उनको जल्दी ले आइए ॥31॥

रामचन्द्रजी और हनुमान का संवाद

चौपाई

सुनि सीता दुख प्रभु सुख अयना। भरि आए जल राजिव नयना॥
बचन कायँ मन मम गति जाही। सपनेहुँ बूझिअ बिपति कि ताही॥

सुखके धाम श्रीरामचन्द्रजी सीताजीके दुःखके समाचार सुन अति खिन्न हुए और उनके कमलसे दोनों नेत्रोंमें जल भर आया॥ रामचन्द्रजीने कहा कि जिसने मन, वचन व कर्मसे मेरा शरण लिया है क्या स्वप्नमें भी उसको विपत्ति होनी चाहिये? कदापि नहीं॥

कह हनुमंत बिपति प्रभु सोई। जब तव सुमिरन भजन न होई॥
केतिक बात प्रभु जातुधान की। रिपुहि जीति आनिबी जानकी॥

हनुमानजीने कहा कि हे प्रभु! मनुष्यकी यह विपत्ति तो वही (तभी) है जब यह मनुष्य आपका भजन स्मरण नही करता॥ हे प्रभु इस राक्षसकी कितनीसी बात है। आप शत्रुको जीतकर सीताजीको ले आइये॥

सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी॥
प्रति उपकार करौं का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा॥

रामचन्द्रजीने कहा कि हे हनुमान! सुन, तेरे बराबर मेरे उपकार करनेवाला देवता मनुष्य और मुनि कोइ भी देहधारी नहीं है॥ हे हनुमान! में तेरा क्या प्रत्युपकार (बदले में उपकार) करूं; क्योंकि मरा मन बदला देनेके वास्ते सन्मुखही (मेरा मन भी तेरे सामने) नहीं हो सकता॥

सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेउँ करि बिचार मन माहीं॥
पुनि पुनि कपिहि चितव सुरत्राता। लोचन नीर पुलक अति गाता॥

हे हतुमान! सुन, मेंने अपने मनमें विचार करके देख लिया है कि मैं तुमसे उऋण नहीं हो सकता॥ रामचन्द्रजी ज्यों ज्यों वारंवार हनुमानजीकी ओर देखते है; त्यों त्यों उनके नेत्रोंमें जल भर आता है और शरीर पुलकित हो जाता है॥

दोहा

सुनि प्रभु बचन बिलोकि मुख गात हरषि हनुमंत। चरन परेउ प्रेमाकुल त्राहि त्राहि भगवंत ॥32॥

हनुमानजी प्रभुके वचन सुनकर और प्रभुके मुखकी ओर देखकर मनमें परम हर्षित हो गए॥ और बहुत व्याकुल होकर कहा 'हे भगवान्! रक्षा करो' ऐसे कहता हुए चरणोंमे गिर पड़े ॥32॥

श्री राम हनुमान संवाद

चौपाई

बार बार प्रभु चहइ उठावा। प्रेम मगन तेहि उठब न भावा॥
प्रभु कर पंकज कपि कें सीसा। सुमिरि सो दसा मगन गौरीसा॥

यद्यपि प्रभु उनको चरणोंमेंसे बार-बार उठाना चाहते हैं, परंतु हनुमान् प्रेममें ऐसे मग्न हो गए थे कि वह उठाना नहीं चाहते थे॥ कवि कहते है कि रामचन्द्रजीके चरणकमलोंके बीच हनुमानजी सिर धरे है इस बातको स्मरण करके महादेवकी भी वही दशा होगयी और प्रेममें मग्न हो गये; क्योंकि हनुमान् रुद्रका अंशावतार है॥

सावधान मन करि पुनि संकर। लागे कहन कथा अति सुंदर॥
कपि उठाई प्रभु हृदयँ लगावा। कर गहि परम निकट बैठावा॥

फिर महादेव अपने मनको सावधान करके अति मनोहर कथा कहने लगे॥ महादेवजी कहते है कि हे पार्वती! प्रभुने हनमान्कों उठाकर छातीसे लगाया और हाथ पकड कर अपने बहुत नजदीक बिठाया॥

कहु कपि रावन पालित लंका। केहि बिधि दहेउ दुर्ग अति बंका॥
प्रभु प्रसन्न जाना हनुमाना। बोला बचन बिगत अभिमाना॥

और हनुमानसे कहा कि हे हनुमान! कहो, वह रावणकी पालीहुई लंकापुरी कि जो बड़ा बंका किला हे उसको तुमने कैसे जलाया?॥ रामचन्द्रजीकी यह बात सुन उनको प्रसन्न जाकर हनुमानजीने अभिमानरहित होकर यह वचन कहे कि॥

साखामग कै बड़ि मनुसाई। साखा तें साखा पर जाई॥
नाघि सिंधु हाटकपुर जारा। निसिचर गन बधि बिपिन उजारा॥

हे प्रभु! बानरका तो अत्यंत पराक्रम यही है कि वृक्षकी एक डारसे दूसरी डारपर कूद जाय॥ परंतु जो मै समुद्रको लांघकर लंका में चला गया और वहा जाकर मैंने लंका को जला दिया और बहुतसे राक्षसोंको मारकर अशोक वनको उजाड़ दिया॥

सो सब तव प्रताप रघुराई। नाथ न कछू मोरि प्रभुताई॥

हे प्रभु! यह सब आपका प्रताप है। हे नाथ! इसमें मेरी प्रभुता कुछ नहीं है॥

दोहा

ता कहुँ प्रभु कछु अगम नहिं जा पर तुम्ह अनुकूल। तव प्रभावँ बड़वानलहि जारि सकइ खलु तूल ॥33॥

हे प्रभु! आप जिस पर प्रसन्न हों, उसके लिए कुछ भी असाध्य (कठिन) नहीं है। आपके प्रतापसे निश्चय रूई बड़वानलको जला सकती है (असंभव भी संभव हो सकता है) ॥33॥

श्री राम और हनुमानजी का संवाद

चौपाई

नाथ भगति अति सुखदायनी। देहु कृपा करि अनपायनी॥
सुनि प्रभु परम सरल कपि बानी। एवमस्तु तब कहेउ भवानी॥

रामचन्द्रजीके ये वचन सुनकर हनुमानजीने कहा कि हे नाथ! मुझे तो कृपा करके आपकी अनपायिनी (जिसमें कभी विच्छेद नहीं पडे ऐसी, निश्चल) कल्याणकारी और सुखदायी भक्ति दो॥ महादेवजीने कहा कि हे पार्वती! हुनुमानकी ऐसी परम सरल वाणी सुनकर प्रभुने कहा कि हे हनुमान्! 'एवमस्तु' (ऐसाही हो) अर्थात् तुमको हमारी भक्ति प्राप्त हो॥

उमा राम सुभाउ जेहिं जाना। ताहि भजनु तजि भाव न आना॥
यह संबाद जासु उर आवा। रघुपति चरन भगति सोइ पावा॥

हे पार्वती! जिन्होंने रामचन्द्रजीके परम दयालु स्वभावको जान लिया है उनको रामचन्द्रजीकी भक्तिको छोंड़कर दूसरा कुछभी अच्छा नहीं लगता॥ यह हनुमान् और रामचन्द्रजीका संवाद जिसके हृदयमें दृढ़ रीतिसे आजाता है वह श्री रामचन्द्रजीकी भक्तिको अवश्य पा लेता है॥

सुनि प्रभु बचन कहहिं कपिबृंदा। जय जय जय कृपाल सुखकंदा॥
तब रघुपति कपिपतिहि बोलावा। कहा चलैं कर करहु बनावा॥

प्रभुके ऐसे वचन सुनकर तमाम वानरवृन्दने पुकार कर कहा कि हे दयालू! हे सुखके मूलकारण प्रभु! आपकी जय हो, जय हो, जय हो॥ उस समय प्रभुने सुग्रीवको बुलाकर कहा कि हे सुग्रीव! अब चलनेकी तैयारी करो॥

अब बिलंबु केह कारन कीजे। तुरंत कपिन्ह कहँ आयसु दीजे॥
कौतुक देखि सुमन बहु बरषी। नभ तें भवन चले सुर हरषी॥

अब विलम्ब क्यों किया जाता है। अब तुम वानरोंको तुरंत आज्ञा क्यो नहीं देते हो॥ इस कौतुकको देखकर (भगवान की यह लीला) देवताओंने आकाशसे बहुतसे फूल बरसाये और फिर वे आनंदित होकर अपने अपने लोक को चल दिये॥

दोहा

कपिपति बेगि बोलाए आए जूथप जूथ।
नाना बरन अतुल बल बानर भालु बरूथ ॥34॥

रामचन्द्रजीकी आज्ञा होतेही सुग्रीवने वानरोंके सेनापतियोंको बुलाया और सुग्रीवकी आज्ञाके साथही वानर और रीछोके झुंड कि जिनके अनके प्रकारक वर्ण हैं और अतूलित बल हैं वे वहां आये॥

श्री रामजी का वानरों की सेना के साथ समुद्र तट पर जाना

चौपाई

प्रभु पद पंकज नावहिं सीसा। गर्जहिं भालु महाबल कीसा॥
देखी राम सकल कपि सेना। चितइ कृपा करि राजिव नैना॥

महाबली वानर और रीछ वहां आकर गर्जना करते हैं और रामचन्द्रजीके चरणकमलोंमें सिर झूँकाकर प्रणाम करते हैं॥ तमाम वानरॉकी सेनाको देखकर कमलनयन प्रभुने कृपा दृष्टिसे उनकी ओर देखा॥

राम कृपा बल पाइ कपिंदा। भए पच्छजुत मनहुँ गिरिंदा॥
हरषि राम तब कीन्ह पयाना। सगुन भए सुंदर सुभ नाना॥

प्रभुकी कृपादृष्टि पड़तेही तमाम वानर रघुनाथजीके कृपाबलको पाकर ऐसे बली और बड़े होगये कि मानों पक्षसहित पहाड़ ही (पंखवाले बड़े पर्वत) तो नहीं है? ॥ उस समय रामचन्द्रजीने आनंदित होकर प्रयाण किया. तब नाना प्रकारके अच्छे और सुन्दर शकुनभी होने लगे॥

जासु सकल मंगलमय कीती। तासु पयान सगुन यह नीती॥
प्रभु पयान जाना बैदेहीं। फरकि बाम अँग जनु कहि देहीं॥

यह दस्तूर है कि जिसके सब मंगलमय होना होता है (जिनकी कीर्ति सब मंगलों से पूर्ण है) उसके प्रयाणके समय शकुनभी अच्छे होते है॥ प्रभुने प्रयाण किया उसकी खबर सीताजीको भी हो गई; क्योंकि जिस समय प्रभुने प्रयाण किया उस वक्त सीताजीके शुभसूचक बाएं अंग फड़कने लगे (मानो कह रह है की श्री राम आ रहे हैं)॥

जोइ जोइ सगुन जानकिहि होई। असगुन भयउ रावनहिं सोई॥
चला कटकु को बरनैं पारा। गर्जहिं बानर भालु अपारा॥

ओर जो जो शकुन सीताजीके अच्छे हुए वे सब रावणके बुरे शकुन हुए॥ इस प्रकार रामचन्द्रजीकी सेना रवान हुई, कि जिसके अन्दर असंख्यात वानर और रीछ गरज रहे है. उस सेनाका वर्णन करके कौन आदमी पार पा सकता है (कौन कर सकता है?)॥

नख आयुध गिरि पादपधारी। चले गगन महि इच्छाचारी॥
केहरिनाद भालु कपि करहीं। डगमगाहिं दिग्गज चिक्करहीं॥

जिनके नखही तो शस्त्र हैं। पर्वत व वृक्ष हाथोंमें है वे इच्छाचारी वानर (इच्छानुसार सर्वत्र बेरोक-टोक चलनेवाले) और रीछ आकाशमें कूदते हुए आकाशमार्ग होकर सेनाके बीच जा रहे है॥ वानर व रीछ मार्गमें जाते हुए सिंहनाद कर रहे है. जिससे दिग्गज हाथी डगमगाते हैं और चीत्कार करते हैं॥

छंद

चिक्करहिं दिग्गज डोल महि गिरि लोल सागर खरभरे। मन हरष सभ गंधर्ब सुर मुनि नाग किंनर दुख टरे॥
कटकटहिं मर्कट बिकट भट बहु कोटि कोटिन्ह धावहीं। जय राम प्रबल प्रताप कोसलनाथ गुन गन गावहीं॥

जब रामचन्द्रजीने प्रयाण किया तब दिग्गज चिंघाड़ने लगे, पृथ्वी डगमगाने लगी, पर्वत कांपने लगे, समुद्र खड़भड़ा गये, सर्यु आनंदित हुआ कि हमार वंशमें दुष्टोंको दंड देनेवाला पैदा हुआ। देवता, मुनि, नाग व् किन्नर ये सब मन में हर्षित हुए कि अब हमारे दुःख टल गए। वानर विकट रीतिसे कटकटा रहे है, कोटयानकोट बहुतसे भट इधर उधर दौड़ रहे हैं और रामचन्द्रजीके गुणगणोंको गा रहे हैं कि हे प्रबलप्रतापवाले राम! आपकी जय हो॥

छंद

सहि सक न भार उदार अहिपति बार बारहिं मोहई। गह दसन पुनि पुनि कमठ पृष्ठ कठोर सो किमि सोहई॥
रघुबीर रुचिर प्रयान प्रस्थिति जानि परम सुहावनी। जनु कमठ खर्पर सर्पराज सो लिखत अबिचल पावनी॥

उस सेनाके अपार भारको शेषजी (सर्पराज शेष) स्वयं सह नहीं सकते जिससे वारंवार मोहित होते हें और अपने दाँतोंसे बार-बार कमठकी (कच्छप की) कठोर पीठको पकडे रहते है। सो वह शोभा कैसी मालूम होती है कि मानो रामचन्द्रजीके सुन्दर प्रयाणकी प्रस्थिति (प्रस्थान यात्रा) को परमरम्य जानकर शेषजी कमठकी पीठरूप खप्परपर अपने दांतोसे लिख

रहै हैं, कि जिससे वह प्रस्थानका पवित्र संवत् च मिती सदा स्थिर बनी रहे, जैसे कुएं बावली मंदिर आदि बनानेवाले उसपर पत्थरमें प्रशस्ति खुदवाकर लगा देते है ऐसे शेषजी मानो कमठकी पीठपर प्रशस्तिही खोद रहे थे॥

दोहा

एहि बिधि जाइ कृपानिधि उतरे सागर तीर। जहँ तहँ लागे खान फल भालु बिपुल कपि बीर ॥35॥

कृपाके भ्रंडार श्रीरामचन्दज्ञी इस तरह जाकर समुद्रके तीरपर उतरे, तब वीर रीछ और वानर जहां तहां वहुतसे फल खाने लगे ॥35॥

मंदोदरी और रावण का संवाद

चौपाई

उहाँ निसाचर रहहिं ससंका। जब तें जारि गयउ कपि लंका॥
निज निज गृहँ सब करहिं बिचारा। नहिं निसिचर कुल केर उवारा॥

जबसे हनुमान् लंकाको जलाकर चले गए तबसे वहां राक्षसलोग शंकासहित (भयभीत) रहने लगे॥ और अपने अपने घरमें सब विचार करने लगे कि अब राक्षसकुल बचनेका नहीं है (राक्षस कुल की रक्षा का कोई उपाय नहीं है)॥

जासु दूत बल बरनि न जाई। तेहि आएँ पुर कवन भलाई॥
दूतिन्ह सन सुनि पुरजन बानी। मंदोदरी अधिक अकुलानी॥

हम लोग जिसके दूतके बलको भी कह नहीं सकते उसके आनेपर फिर पुरका भला कैसे हो सकेगा (बुरी दशा होगी)॥ नगरके लोगोंकी ऐसी अति भयसहित वाणी सुनकर मन्दोंदरी अपने मनमें बहुत घबरायी॥

रहसि जोरि कर पति पग लागी। बोली बचन नीति रस पागी॥
कंत करष हरि सन परिहरहू। मोर कहा अति हित हियँ धरहू॥

और एकान्तमें आकर हाथ जोड़कर पातिके चरणोंमे गिरकर नितिके रससे भरे हुए ये वचन बोली॥ हे कान्त! हरि भगवानसे जो आपके वैरभाव हैं उसे छोड़ दीजिए। मै जो आपसे कहती हूँ वह आपको अत्यंत हितकारी है सो इसको अपने चित्तमें धारण कीजिए॥

समुझत जासु दूत कइ करनी। स्रवहिं गर्भ रजनीचर घरनी॥
तासु नारि निज सचिव बोलाई। पठवहु कंत जो चहहु भलाई॥

भला अब उसके दूतके कामको तो देखो कि जिसको नाम लेनेसे राक्षसियोंके गर्भ गिर जाते हैं ॥ इसलिए हे कान्त! मेरा कहना तो यह है कि जो आप अपना भला चाहो तो, अपने मंत्रियोंको बुलाकर उसके साथ उनकी स्त्री को भेज दीजिए॥

तव कुल कमल बिपिन दुखदाई। सीता सीत निसा सम आई॥
सुनहु नाथ सीता बिनु दीन्हें। हित न तुम्हार संभु अज कीन्हें॥

जैसे शीतऋतु अर्थात् शिशिर रीतुकी रात्रि (जाड़ेकी रात्रि) आनेसे कमलोंके बनका नाश हो जाता हे ऐसे तुम्हारे कुलरूप कमलबनका संहार करनेके लिये यह सीता शिशिर रितुकी रात्रिके समान आयी है॥ हे नाथ! सुनो, सीताको बिना देनेके तो चाहे महादेव ओर ब्रह्माजी भले कुछ उपाय क्यों न करे पर उससे आपका हित नहीं होगा॥

दोहा

राम बान अहि गन सरिस निकर निसाचर भेक। जब लगि ग्रसत न तब लगि जतनु करहु तजि टेक ॥36॥

हे नाथ रामचन्द्रजीके बाण तो सर्पोंके गणके (समूह) समान है और राक्षससमूह मेंडकके झुंडके समान हैं। सो वे इनका संहार नहीं करते इससे पहले पहले आप यत्न करो और जिस बातका हठ पकड़ रक्खा है उसको छोड़कर उपाय कर लीजिए॥

रावण और मंदोदरी का संवाद

चौपाई

श्रवन सुनी सठ ता करि बानी। बिहसा जगत बिदित अभिमानी॥
सभय सुभाउ नारि कर साचा। मंगल महुँ भय मन अति काचा॥

कवि कहता है कि वो शठ मन्दोदरीकी यह वाणी सुनकर हँसा क्योंकि उसके अभिमानकौ तमाम संसार जानता है॥ और बोला कि जगत्में जो यह बात कही जाती है कि स्त्रीका स्वभाव डरपोक होता है सो यह बात सच्ची है। और इसीसे तेरा मन मंगलकी बातमें अमंगल समझता है॥

जौं आवइ मर्कट कटकाई। जिअहिं बिचारे निसिचर खाई॥
कंपहिं लोकप जाकीं त्रासा। तासु नारि सभीत बड़ि हासा॥

क्योंकि अब वानरोकी सेना यहां आवेगी तो क्या बिचारा वह जीती रह सकेगी क्योंकि राक्षस उसको आतेही खा जायेंगे॥ जिसकी त्रासके मारे लोकपाल कांपते है उसकी स्त्रीका भय होना यह तो एक बड़ी हँसीकी बात है॥

अस कहि बिहसि ताहि उर लाई। चलेउ सभाँ ममता अधिकाई॥
मंदोदरी हृदयँ कर चिंता। भयउ कंत पर बिधि बिपरीता॥

वह दुष्ट मंदोदारीको ऐसे कह, उसको छातीमें लगाकर मनमें बड़ी ममता रखता हुआ सभामें गया॥ परन्तु मन्दोदरीने उस वक़्त समझ लिया कि अब इस कान्तपर दैव प्रतिकूल होगया है॥

बैठेउ सभाँ खबरि असि पाई। सिंधु पार सेना सब आई॥
बूझेसि सचिव उचित मत कहहू। ते सब हँसे मष्ट करि रहहू॥

रावण सभामे जाकर बैठा वहां ऐसी खबर आयी कि सब सेना समुद्र के उस पार आ गयी है॥ तब रावणने सब मंत्रियोसे पूँछा की तुम अपना अपना जो योग्य मत हो वह कहो। तब वे सब मंत्री हँसे और चुप लगा कर रह गए (इसमें सलाह की कौन-सी बात है?)॥

जितेहु सुरासुर तब श्रम नाहीं। नर बानर केहि लेखे माहीं॥

फिर बोले की हे नाथ! जब आपने देवता और दैत्योंको जीता उसमें भी आपको श्रम नही हुआ तो मनुष्य और वानर तो कौन गिनती है॥

दोहा

सचिव बैद गुर तीनि जौं प्रिय बोलहिं भय आस राज धर्म तन तीनि कर होइ बेगिहीं नास ॥37॥

जो मंत्री भय वा लोभसे राजाको सुहाती बात कहता है, तो उसके राजका तुरंत नाश हो जाता है, और जो वैद्य रोगीको सुहाती बात कहता है तो रोगीका वेगही नाश हो जाता है, तथा गुरु जो शिष्यके सुहाती बात कहता है, उसके धर्मका शीघ्रही नाश हो जाता है ॥37॥

विभीषण का रावण को समझाना

चौपाई

सोइ रावन कहुँ बनी सहाई। अस्तुति करहिं सुनाइ सुनाई॥
अवसर जानि बिभीषनु आवा। भ्राता चरन सीसु तेहिं नावा॥

सो रावणके यहां वैसीही सहाय बन गयी अर्थात् सब मंत्री सुना सुना कर रावणकी स्तुति करने लगे॥ उस अवसरको जानकर विभीषण वहां आया और बड़े भाईके चरणों में उसने सिर नवाया॥

पुनि सिरु नाइ बैठ निज आसन। बोला बचन पाइ अनुसासन॥
जौ कृपाल पूँछिहु मोहि बाता। मति अनुरूप कहउँ हित ताता॥

फिर प्रणाम करके वह अपने आसनपर जा बैठा॥ और रावणकी आज्ञा पाकर यह वचन बोला, हे कृपालु! आप मुझसे जो बात पूछते हो सो है तात! मैं भी मेरी बुद्धिके अनुसार कहूंगा॥

जो आपन चाहै कल्याना। सुजसु सुमति सुभ गति सुख नाना॥
सो परनारि लिलार गोसाईं। तजउ चउथि के चंद कि नाईं॥

हे तात! जो आप अपना कल्याण, सुयश, सुमति, शुभ-गति, और नाना प्रकारका सुख चाहते हो॥ तब तो हे स्वामी! परस्त्रीके लिलारका (ललाट को) चौथके चांदकी नाई (तरह) त्याग दो (जैसे लोग चौथ के चंद्रमा को नहीं देखते, उसी प्रकार परस्त्री का मुख ही न देखे)॥

चौदह भुवन एक पति होई। भूतद्रोह तिष्टइ नहिं सोई॥
गुन सागर नागर नर जोऊ। अलप लोभ भल कहइ न कोऊ॥

चाहो कोई एकही आदमी चौदहा लोकोंका पति हो जावे परंतु जो प्राणीमात्रसे द्रोह रखता है वह स्थिर नहीं रहता अर्थात् तुरंत नष्ट हो जाता हैँ॥ जो आदमी गुणोंका सागर और चतुर है परंतु वह यदि थोड़ा भी लोभ कर जाय तो उसे कोई भी अच्छा नहीं कहता॥

दोहा

काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरक के पंथ। सब परिहरि रघुबीरहि भजहु भजहिं जेहि संत ॥38॥

हे नाथ! ये सद्ग्रन्थ अर्थात् वेद आदि शास्त्र ऐसे कहते हैं कि काम, कोध, मद और लोभ ये सब नरक के मार्ग हैं इस वास्ते इन्हें छोड़कर रामचन्द्रजीके चरणोंकी सेवा करो ॥38॥

रावण को विभीषण का समझाना

चौपाई

तात राम नहिं नर भूपाला। भुवनेस्वर कालहु कर काला॥
ब्रह्म अनामय अज भगवंता। ब्यापक अजित अनादि अनंता॥

हे तात! राम मनुष्य और राजा नहीं हैं, किंतु वे साक्षात त्रिलोकीनाथ और कालके भी काल है॥ जो साक्षात् परब्रह्म, निर्विकार, अजन्मा, सर्वव्यापक, अजेय, आदि और अनंत ब्रह्म है॥

गो द्विज धेनु देव हितकारी। कृपा सिंधु मानुष तनुधारी॥
जन रंजन भंजन खल ब्राता। बेद धर्म रच्छक सुनु भ्राता॥

वे कृपासिंधु गौ, ब्राह्मण, देवता और पृथ्वीका हित करनेके लिये, दुष्टोके दलका संहार करनेके लिये, वेद और धर्मकी रक्षा करनेके लिये प्रकट हुए हे॥

ताहि बयरु तजि नाइअ माथा। प्रनतारति भंजन रघुनाथा॥
देहु नाथ प्रभु कहुँ बैदेही। भजहु राम बिनु हेतु सनेही॥

सो शरणगतोंके संकट मिटानेवाले उन रामचन्द्रजीको वैर छोड़कर प्रणाम करो॥ हे नाथ! रामचन्द्रजी को सीता दे दीजिए और कामना छोडकर स्नेह रखनेवाले रामका भजन करो॥

सरन गएँ प्रभु ताहु न त्यागा। बिस्व द्रोह कृत अघ जेहि लागा॥
जासु नाम त्रय ताप नसावन। सोइ प्रभु प्रगट समुझु जियँ रावन॥

हे नाथ! वे शरण जानेपर ऐसे अधर्मीको भी नहीं त्यागते कि जिसको विश्वद्रोह करनेका पाप लगा हो॥ हे रावण! आप अपने मनमें निश्चय समझो कि जिनका नाम लेनेसे तीनों प्रकारके ताप निवृत्त हो जाते हैं वेही प्रभु आज पृथ्वीपर प्रकट हुए हैं॥

दोहा

बार बार पद लागउँ बिनय करउँ दससीस। परिहरि मान मोह मद भजहु कोसलाधीस ॥39(क)॥

हे रावण! मैं आपके वारंवार पावों में पड़कर विनती करता हूँ, सो मेरी विनती सुनकर आप मान, मोह, और मदको छोड़ श्री रामचन्द्रजी की सेवा करो ॥39(क)॥

दोहा

मुनि पुलस्ति निज सिष्य सन कहि पठई यह बात। तुरत सो मैं प्रभु सन कही पाइ सुअवसरु तात ॥39(ख)॥

पुलस्त्यऋषीने अपने शिष्यको भेजकर यह बात कहला भेजी थी सो अवसर पाकर यह बात हे रावण! मैंने आपसे कही है ॥39(ख)॥

विभीषण और माल्यावान का रावण को समझाना

चौपाई

माल्यवंत अति सचिव सयाना। तासु बचन सुनि अति सुख माना॥
तात अनुज तव नीति बिभूषन। सो उर धरहु जो कहत बिभीषन॥

वह माल्यावान नाम एक सुबुद्धि मंत्री बैठा हुआ था. वह विभीषणके वचन सुनकर. अतिप्रसन्न हुआ ॥ और उसने रावणसे कहा कि तात 'आपका छोटा भाई बड़ा नीति जाननेवाला हैँ इस वास्ते बिभीषण जो बात कहता है, उसी बातको आप अपने मनमें धारण करो॥

रिपु उतकरष कहत सठ दोऊ। दूरि न करहु इहाँ हइ कोऊ॥
माल्यवंत गह गयउ बहोरी। कहइ बिभीषनु पुनि कर जोरी॥
माल्यवान्की यह बात सुनकर रावणने कहा कि हे राक्षसो! ये दोनों नीच शत्रुकी बड़ाई करते हैं उनको तुममेंसे कोई भी यहां से निकाल नहीं देते, यह क्या बात है॥ तब माल्यवान् तो उठकर अपने घरको चला गया. और बिभीषणने हाथ जोड़कर फिर कहा॥

सुमति कुमति सब कें उर रहहीं। नाथ पुरान निगम अस कहहीं॥
जहाँ सुमति तहँ संपति नाना। जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना॥

कि हे नाथ! वेद और पुरानोमें ऐसा कहा है कि सुबुद्धि और कुबुद्धि सबके मनमें रहती है जहा सुमति है, वहा संपदा है. आर जहा कुबुद्धि है वहां विपत्ति॥

तव उर कुमति बसी बिपरीता। हित अनहित मानहु रिपु प्रीता॥
कालराति निसिचर कुल केरी। तेहि सीता पर प्रीति घनेरी॥

हे रावण! आपके हृदयमें कुबुद्धि आ बसी है, इसीसे आप हित और अनहितको. विपरीत मानते हो की जिससे शत्रुको प्रीति होती है॥ जो राक्षसोंके कुलकी कालरात्रि है उस सीतापर आपकी बहुत प्रीति हैं यह कुबुद्धि नहीं तो और क्या हे॥

दोहा

तात चरन गहि मागउँ राखहु मोर दुलार। सीता देहु राम कहुँ अहित न होइ तुम्हार ॥40॥

हे तात में चरण पकडकर आपसे प्रार्थना करता हूं सो मेरी प्रार्थना अंगीकार करो आप सीता रामचंद्रजीको दे दो, जिससे आपका बहुत भला होगा ॥40॥

विभीषण का अपमान

चौपाई

बुध पुरान श्रुति संमत बानी। कही बिभीषन नीति बखानी॥
सुनत दसानन उठा रिसाई। खल तोहि निकट मृत्यु अब आई॥

सयाने बिभीषणने नीतिको कहकर वेद और पुराणके संमत वाणी कही॥ जिसको सुनकर रावण गुस्सा होकर उठ खड़ाहुआ और बोला कि हे दुष्ट! तेरी मृत्यु निकट आ गयी दीखती है॥

जिअसि सदा सठ मोर जिआवा। रिपु कर पच्छ मूढ़ तोहि भावा॥
कहसि न खल अस को जग माहीं। भुज बल जाहि जिता मैं नाहीं॥

हे नीच! सदा तू जीविका तो मेरी पाता है और शत्रुका पक्ष उसका सदा अच्छा लगता है॥ हे दुष्ट! तू यह नही कहता कि जिसको हमने अपन भुजबलसे नहीं जीता ऐसा जगत्में कौन है? ॥

मम पुर बसि तपसिन्ह पर प्रीती। सठ मिलु जाइ तिन्हहि कहु नीती॥
अस कहि कीन्हेसि चरन प्रहारा। अनुज गहे पद बारहिं बारा॥

हे शठ मेरी नगरीमें रहकर जो तू तपस्वीसे प्रीति करता है तो हे नीच! उससे जा मिल और उसीसे नीतिका उपदेश कर॥ ऐसे कहकर रावणने लातका प्रहार; किया परंतु बिभीषणने तो इतने परभी वारंत्रार पैरही पकड़े॥

उमा संत कइ इहइ बड़ाई। मंद करत जो करइ भलाई॥
तुम्ह पितु सरिस भलेहिं मोहि मारा। रामु भजें हित नाथ तुम्हारा॥

शिवजी कहते हैं, है पार्वती! सत्पुरुषोंकी यही बड़ाई है कि बुरा करनेपर भी वे तो पीछा उसकी भलाईही करते हैं॥ विभीषण ने कहा, हे रावण! आप मेरे पिताके बराबर हो इस वास्ते आपने जो मुझको मारा वह ठीक ही है, परंतु आपका भला तो रामचन्द्रजीके भजन से ही होगा॥

सचिव संग लै नभ पथ गयऊ। सबहि सुनाइ कहत अस भयऊ॥

ऐसे कहकर बिभीषण अपने मंत्रियोंको संग लेकर आकाशमार्ग गया और जाते समय सबको सुनाकर ऐसे कहता गया॥

दोहा

रामु सत्यसंकल्प प्रभु सभा कालबस तोरि। मैं रघुबीर सरन अब जाउँ देहु जनि खोरि ॥41॥

कि हे प्रभु! रामचन्द्रजी सत्यप्रतिज्ञ है और तेरी सभा कालके आधीन है। और में अब रामचन्द्रजीके शरण जाता हूँ सो मुझको अपराध मत लगाना ॥41॥

विभीषण का प्रभु श्रीरामकी शरण के लिए प्रस्थान

चौपाई

अस कहि चला बिभीषनु जबहीं। आयूहीन भए सब तबहीं॥
साधु अवग्या तुरत भवानी। कर कल्यान अखिल कै हानी॥

जिस वक़्त विभीषण ऐसे कहकर लंकासे चले उसी समय तमाम राक्षस आयुहीन हो गये॥ महादेवजीने कहा कि हे पार्वती! साधू पुरुषोकी अवज्ञा करनी ऐसी ही बुरी है कि वह तुरंत तमाम कल्याणको नाश कर देती है॥

रावन जबहिं बिभीषन त्यागा। भयउ बिभव बिनु तबहिं अभागा॥
चलेउ हरषि रघुनायक पाहीं। करत मनोरथ बहु मन माहीं॥

रावणने जिस समय बिभीषणका परित्याग किया उसी क्षण वह मंदभागी विभवहीन हो गया॥ बिभीषण मनमें अनेक प्रकारके मनोरथ करतेहुए आनंदके साथ रामचन्द्रजीके पास चला॥

देखिहउँ जाइ चरन जलजाता। अरुन मृदुल सेवक सुखदाता॥
जे पद परसि तरी रिषनारी। दंडक कानन पावनकारी॥

विभीषण मनमें विचार करने लगा कि आज जाकर मैं रघुनाथजीके भक्तलोगोंके सुखदायी अरुण (लाल वर्ण के सुंदर चरण) और सुकोमल चरणकमलोंके दर्शन करूंगा॥ कैसे हे चरणकमल कि जिनको परस कर (स्पर्श पाकर) गौतम ऋषिकी स्त्री (अहल्या) ऋषिके शापसे पार उतरी. जिनसे दंडक वन पवित्र दुआ है॥

जे पद जनकसुताँ उर लाए। कपट कुरंग संग धर धाए॥
हर उर सर सरोज पद जेई। अहोभाग्य मैं देखिहउँ तेई॥

जिनको सीताजी अपने हृदयमें सदा लगाये रहतीं है. जो कपटी हरिण (मारीच राक्षस) के पीछे दौड़े॥ रूप हृदयरूपी सरोवर भीतर कमलरूप हैं, उन चरणोको जाकर मैं देखूंगा। अहो! मेरा बड़ा भाग्य हे॥

दोहा

जिन्ह पायन्ह के पादुकन्हि भरतु रहे मन लाइ। ते पद आजु बिलोकिहउँ इन्ह नयनन्हि अब जाइ ॥42॥

जिन चरणोकी पादुकाओमें भरतजी रातदिन मन लगाये है आज मैं जाकर इन्ही नेत्रोसे उन चरणोंको देखूंगा ॥42॥

चौपाई

ऐहि बिधि करत सप्रेम बिचारा। आयउ सपदि सिंदु एहिं पारा॥
कपिन्ह बिभीषनु आवत देखा। जाना कोउ रिपु दूत बिसेषा॥

यिभीषण इस प्रकार प्रेमसहित अनेक प्रकारके विचार करते हुए तुरंत समुद्रके इस पार आए॥ वानरोंने बिभीषणको आते देखकर जाना कि यह कोई शत्रुका दूत है॥

ताहि राखि कपीस पहिं आए। समाचार सब ताहि सुनाए॥
कह सुग्रीव सुनहु रघुराई। आवा मिलन दसानन भाई॥

वानर उनको वही रखकर सुग्रीवके पास आये और जाकर उनके सब समाचार सुग्रीवको सुनाये॥ तब सुग्रीवने जाकर रामचन्द्रजीसे कहा कि हे प्रभु! रावणका भाई आपसे मिलनेको आया है॥

कह प्रभु सखा बूझिऐ काहा। कहइ कपीस सुनहु नरनाहा॥
जानि न जाइ निसाचर माया। कामरूप केहि कारन आया॥

तब रामचन्द्रजीने कहा कि हे सखा! तुम्हारी क्या राय है (तुम क्या समझते हो)? तब सुग्रीवने रामचन्द्रजीसे कहा कि हे नरनाथ! सुनो,॥ राक्षसोंकी माया जाननेमें नहीं आ सकती. इसी बास्ते यह नहीं कह सकते कि यह मनोवांछित रूप धरकर यहां क्यों आया है?॥

भेद हमार लेन सठ आवा। राखिअ बाँधि मोहि अस भावा॥
सखा नीति तुम्ह नीकि बिचारी। मम पन सरनागत भयहारी॥

मेरे मनमें तो यह जँचता है कि यह शठ हमारा भेद लेने को आया है। इस वास्ते इसको बांधकर रख देना चाहिये॥ तब रामचन्द्रजीने कहा कि है सखा! तुमने यह नीति बहुत अच्छी बिचारी परंतु मेरा पण शरणागतोंका भय मिटानेका है॥

सुनि प्रभु बचन हरष हनुमाना। सरनागत बच्छल भगवाना॥

रामचन्द्रजीके वचन सुनकर हनुमानजीको बड़ा आनंद हुआ कि भगवान् सच्चे शरणागतवत्सल हैं (शरण में आए हुए पर पिता की भाँति प्रेम करनेवाले)॥

दोहा

सरनागत कहुँ जे तजहिं निज अनहित अनुमानि। ते नर पावँर पापमय तिन्हहि बिलोकत हानि ॥43॥

कहा है कि जो आदमी अपने अहितको विचार कर शरणागतको त्याग देते हैं. उन आदमियोंको पामर (पागल) और पापरूप जानना चाहिये क्योंकि उनको देखनेहीसे हानि होती है ॥43॥

विभीषण को भगवान रामकी शरण प्राप्ति

चौपाई

कोटि बिप्र बध लागहिं जाहू। आएँ सरन तजउँ नहिं ताहू॥
सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं॥

प्रभुने कहा कि चाहे कोई महापापी होवे अर्थात् जिसको करोड़ ब्रह्महत्याका पाप लगा हुआ होवे और वह भी यदि मेरे शरण चला आवे तो मै उसको किसीकदर छोंड़ नहीं सकता॥ यह जीव जब मेरे सन्मुख हो जाता है तब मैं उसके करोड़ों जन्मोंके पापोको नाश कर देता हूं॥

पापवंत कर सहज सुभाऊ। भजनु मोर तेहि भाव न काऊ॥
जौं पै दुष्ट हृदय सोइ होई। मोरें सनमुख आव कि सोई॥

पापी पुरुषोंका यह सहज स्वभाव है कि उनको किसी प्रकारसे मेरा भजन अच्छा नहीं लगता॥ हे सुग्रीव! जो पुरुष (वह रावण का भाई) दुष्टहृदय होगा क्या वह मेरे सत्पर आ सकेगा? कदापि नहीं॥

निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा॥
भेद लेन पठवा दससीसा। तबहुँ न कछु भय हानि कपीसा॥

हे सुग्रीव! जो आदमी निर्मल अंतःकरणवाला होगा वही मुझको पावेगा क्योंकि मुझको छल छिद्र और कपट कुछभी अच्छा नहीं लगता॥ कदाचित् रावणने इसको भेद लेनेके लिए भेजा होगा तोभी हे सुग्रीव! हमको उसका न तो कुछ भय है और न किसी प्रकारकी हानि है॥

जग महुँ सखा निसाचर जेते। लछिमनु हनइ निमिष महुँ तेते॥
जौं सभीत आवा सरनाईं। रखिहउँ ताहि प्रान की नाईं॥

क्योंकि जगत्में जितने राक्षस है उन सबोंको लक्ष्मण एक क्षणभरमें मार डालेगा॥ और उनमेंसे भयभीत होकर जो मेरे शरण आजायगा उसको तो में अपने प्राणोंके बराबर रखूँगा॥

दोहा

उभय भाँति तेहि आनहु हँसि कह कृपानिकेत। जय कृपाल कहि कपि चले अंगद हनू समेत ॥44॥

हँसकर कृपानिधान श्रीरामने कहा कि हे सुग्रीव! चाहो वह शुद्ध मनसे आया हो अथवा भेदबुद्धि विचारकर आया हो, दोनो ही तरहसे इसको यहां ले आओ। रामचन्द्रजीके ये वचन सुनकर अंगद और हनुमान् आदि सब बानर हे कृपालु! आपका. जय हो ऐसे कहकर चले ॥44॥

विभीषण को भगवान रामकी शरण प्राप्ति

चौपाई

सादर तेहि आगें करि बानर। चले जहाँ रघुपति करुनाकर॥
दूरिहि ते देखे द्वौ भ्राता। नयनानंद दान के दाता॥

वे वानर आदरसहित विभीषणको अपने आगे लेकर उस स्थानको चले कि जहां करुणाकी खान श्री रघुनाथजी विराजमान थे॥ विभीषणने नेत्रोंको आनन्द देनेवाले उन दोनों भाइयोंको दूर ही से देखा॥

बहुरि राम छबिधाम बिलोकी। रहेउ ठटुकि एकटक पल रोकी॥
भुज प्रलंब कंजारुन लोचन। स्यामल गात प्रनत भय मोचन॥

फिर वह छविके धाम श्रीरामचन्द्रजीको देखकर पलकोको रोककर एकटक देखते खड़े रहे॥ श्रीरघुनाथजीका स्वरूप कैसा है जिसमें लंबी भुजा है, कमलसे लालनेत्र हैं। मेघसा सधन श्याम शरीर है, जो शरणागतोंके भयको मिटानेवाला है॥

सघ कंध आयत उर सोहा। आनन अमित मदन मन मोहा॥
नयन नीर पुलकित अति गाता। मन धरि धीर कही मृदु बाता॥
जिसके सिंहकेसे कंधे है, विशाल वक्षःस्थल शोभायमान है, मुख ऐसा है कि जिसकी छविको देखकर असंख्य कामदेव मोहित हो जाते हैं॥ उस स्वरूपका दर्शन होतेही विभीषणको नेत्रोंमें जल आगया। शरीर अत्यंत पुलकित हो गया, तथापि उसने मनमें धीरज धरकर ये सुकोमल वचन कहे॥

नाथ दसानन कर मैं भ्राता। निसिचर बंस जनम सुरत्राता॥
सहज पापप्रिय तामस देहा। जथा उलूकहि तम पर नेहा॥

कि हे देवताओंके पालक! मेरा राक्षसोंके वंशमें तो जन्म है और हे नाथ! मैं रावणका भाई॥ स्वभावसेही पाप मुझको प्रिय लगता है, और यह मेरा तामस शरीर है सो यह बात ऐसी है कि जैसे उल्लूका अंधकारपर सदा स्नेह रहता है। ऐसे मेरे पाप पर प्यार है॥

दोहा

श्रवन सुजसु सुनि आयउँ प्रभु भंजन भव भीर। त्राहि त्राहि आरति हरन सरन सुखद रघुबीर ॥45॥

तथापि हे प्रभु! हे भय और संकट मिटानेवाले! मै कानोंसे आपका सुयश सुनकर आपके शरण आया हूँ। सो हे आर्ति (दुःख) हरण हारे! हे शरणागतोंको सुख देनेवाले प्रभु! मेरी रक्षा करो, रक्षा करो ॥45॥

विभीषण को भगवान रामकी शरण प्राप्ति

चौपाई

अस कहि करत दंडवत देखा। तुरत उठे प्रभु हरष बिसेषा॥
दीन बचन सुनि प्रभु मन भावा। भुज बिसाल गहि हृदयँ लगावा॥

ऐसे कहते हुए बिभीषणको दंडवत करते देखकर प्रभु बड़े अल्हादके साथ तुरंत उठ खड़े हए॥ और बिभीषणके दीन वचन सुनकर प्रभुके मनमें वे बहुत भाए आर उसीसे प्रभुने अपनी विशाल भुजासे उनको उठाकर अपनी छातीसे लगाया॥

अनुज सहित मिलि ढिग बैठारी। बोले बचन भगत भयहारी॥
कहु लंकेस सहित परिवारा। कुसल कुठाहर बास तुम्हारा॥

लस्मणसहित प्रभुने उससे मिलकर उसको अपने पास बिठाया. फिर भक्तोंके हित करनेवाले प्रभुने ये वचन कहे॥ कि है लंकेश विभीषण! आपके परिवारसहित कुशल तो है? क्योंकि आपका रहना कुमार्गियोंके बीचमें है॥

खल मंडली बसहु दिनु राती। सखा धरम निबहइ केहि भाँती॥
मैं जानउँ तुम्हारि सब रीती। अति नय निपुन न भाव अनीती॥

रात दिन तुम दुष्टोंकी मंडलीके बीच रहते हो इससे, हे सखा! आपका धर्म कैसे निभता होगा॥ मैने तुम्हारी सब गति जानली है। तुम बडे नीतिनिपुण हो और तुम्हारा अभिप्राय अन्यायपर नहीं है (तुम्हें अनीति नहीं सुहाती)॥

बरु भल बास नरक कर ताता। दुष्ट संग जनि देइ बिधाता॥
अब पद देखि कुसल रघुराया। जौं तुम्ह कीन्हि जानि जन दाया॥

रामचन्द्रजीके ये वचन सुनकर विभीषणने कहा कि हे प्रभु! चाहे नरकमें रहना अच्छा है परंतु दुष्टकी संगति अच्छी नहीं. इसलिये हे विधाता! कभी दुष्टकी संगति मत देना॥ हे रधुनाथजी! आपने अपना जन जानकर जो मुझपर दया की, उससे आपके दर्शन हुए सो। हे प्रभु! अब में आपके चरणोके दर्शन करनेसे कुशल हूँ॥

दोहा

तब लगि कुसल न जीव कहुँ सपनेहुँ मन बिश्राम। जब लगि भजत न राम कहुँ सोक धाम तजि काम ॥46॥

है प्रभु! यह मनुष्य जबतक शोकके धामरूप काम अर्थात् लालसाको छोंड कर श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंकी सेवा नहीं करता तबतक इस जीवको स्वप्नमें भी न तो कुशल है और न कहीं मनको विश्राम (शांति) है ॥46॥

भगवान् श्री राम की महिमा

चौपाई

तब लगि हृदयँ बसत खल नाना। लोभ मोह मच्छर मद माना॥
जब लगि उर न बसत रघुनाथा। धरें चाप सायक कटि भाथा॥

जबतक धनुप बाण धारण किये और कमरमें तरकस कसेहुए श्रीरामचन्द्रजी हृदयमें आकर नहीं बिराजते तबतक लोभ, मोह, मत्सर, मद और मान ये अनेक दुष्ट हृदयके भीतर निवास कर सकते हैं और जब आप आकर हृदयमें विराजते हो तब ये सब भाग जाते हैं॥

ममता तरुन तमी अँधिआरी। राग द्वेष उलूक सुखकारी॥
तब लगि बसति जीव मन माहीं। जब लगि प्रभु प्रताप रबि नाहीं॥

जबतक जीवके हृदयमें प्रभुका प्रतापरूप सूर्य उदय नहीं होता तबतक रागद्वेषरूप उल्लुओं को सुख देनेवाली ममतारूप सघन अंधकारमय अंधियारी रात्रि रहा करती है॥

अब मैं कुसल मिटे भय भारे। देखि राम पद कमल तुम्हारे॥
तुम्ह कृपाल जा पर अनुकूला। ताहि न ब्याप त्रिबिध भव सूला॥

हे राम! अब मैंने आपके चरणकमलोंका दर्शन कर लिया है इससे अब मैं कुशल हूं और मेरा विकट भय भी निवृत्त हो गया है॥ हे प्रभु! हे दयालु! आप जिसपर अनुकूल रहते हो उसको तीन प्रकारके भय और दुःख (आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक ताप) कभी नहीं व्यापते॥

मैं निसिचर अति अधम सुभाऊ। सुभ आचरनु कीन्ह नहिं काऊ॥
जासु रूप मुनि ध्यान न आवा। तेहिं प्रभु हरषि हृदयँ मोहि लावा॥

हे प्रभु! मैं जातिका राक्षस हूं। मेरा स्वभाव अति अधम है। मैंने कोईभी शुभ आचरन नहीं किया है॥ तिसपरभी प्रभुने कृपा करके आनंदसे मुझको छातीसे लगाया कि जिस प्रभुके स्वरूपको ध्यान पाना मुनिलोगोंको कठिन है॥

दोहा

अहोभाग्य मम अमित अति राम कृपा सुख पुंज। देखेउँ नयन बिरंचि सिव सेब्य जुगल पद कंज ॥47॥

सुखकी राशि रामचन्द्रजीकी कृपासे अहो! आज मेरा भाग्य बड़ा अमित और अपार हैं क्योकि ब्रह्माजी और महादेवजी जिन चरणारविन्द-युगलकी (युगल चरण कमलों कि) सेवा करते हैं उन चरणकमलोंका मैंने अपने नेत्रोंसे दर्शन किया ॥47॥

प्रभु श्री रामचंद्रजी की महिमा

चौपाई

सुनहु सखा निज कहउँ सुभाऊ। जान भुसुंडि संभु गिरिजाऊ॥
जौं नर होइ चराचर द्रोही। आवै सभय सरन तकि मोही॥

बिभीषणकी भक्ति देखकर रामचन्द्रजीने कहा कि हे सखा! मैं अपना स्वभाव कहता हूं, सो तू सुन, मेरे स्वभावको या तो काकभुशुंडि जानते हैं या महादेव जानते है, या पार्वती जानती है। इनके सिवा दूसरा कोई नहीं जानता॥ प्रभु कहते हैं कि जो मनुष्य चराचरसे (जड़-चेतन) द्रोह रखता हो, और वह भी जो भयभीत होंके मेरे शरण आ जाए तो॥

तजि मद मोह कपट छल नाना। करउँ सद्य तेहि साधु समाना॥
जननी जनक बंधु सुत दारा। तनु धनु भवन सुहृद परिवारा॥

मद, मोह, कपट और नानाप्रकारके छलको छोड़कर हे सखा! मैं उसको साधु पुरुषके समान कर लेता हूँ॥ देखो, माता, चिता, बंचु, पुत्र, श्री, सन, धन, घर, सुहृद और कुटुम्ब

सब कै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहि बाँध बरि डोरी॥
समदरसी इच्छा कछु नाहीं। हरष सोक भय नहिं मन माहीं॥

इन सबके ममतारूप तागोंको इकट्ठा करके एक सुन्दर डोरी बट (डोरी बनाकर) और उससे अपने मनको मेरे चरणोंमें बांध दे। अर्थात् सबमेंसे ममता छोड़कर केवल मुझमें ममता रखें, जैसे "त्वमेव माता पिता त्वमेव त्वमेव बंधूश्चा सखा त्वमेव। त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्व मम देवदेव"॥ जो भक्त समदर्शी है और जिसके किसी प्रकारकी इच्छा नहीं हे तथा जिसके मनमें हर्ष, शोक, और भय नहीं है॥

अस सज्जन मम उर बस कैसें। लोभी हृदयँ बसइ धनु जैसें॥
तुम्ह सारिखे संत प्रिय मोरें। धरउँ देह नहिं आन निहोरें॥

ऐसे सत्पुरुप मेरे हृदयमें कैसे रहते है, कि जैसे लोभी आदमीके मन. धन सदा बसा रहता है ॥ हे बिभीषण! तुम्हारे जैसे जो प्यारे सन्त भक्त हैं उन्हीके अर्थ मैं देह धारण करता हूं और दूसरा मेरा कुछ भी प्रयोजन नहीं है॥

दोहा

सगुन उपासक परहित निरत नीति दृढ़ नेम। ते नर प्रान समान मम जिन्ह कें द्विज पद प्रेम ॥48॥

जो लोग सगुण उपासना करतै हैं, बड़े हितकारी हैं, नीतिमें निरत है, नियममें दृढ़ है और जिनकी ब्राह्मणोंके चरणकमलों प्रीति है वे मनुष्य मुझको प्राणों के समान प्यारे लगते हें ॥48॥

विभीषण की भगवान् श्रो रामसे प्रार्थना

चौपाई

सुनु लंकेस सकल गुन तोरें। तातें तुम्ह अतिसय प्रिय मोरें॥
राम बचन सुनि बानर जूथा। सकल कहहिं जय कृपा बरूथा॥

है लंकेश (लंकापति)! सुनो, आपमें सब गुण है और इसीसे आप मुझको अतिशय प्यारें लगते हो॥ रामचन्द्रजीके ये वचन सुनकर तमाम वानरोंके झुंड कहने लगे कि हे कृपाके पुंज! आपकी जय हो॥

सुनत बिभीषनु प्रभु कै बानी। नहिं अघात श्रवनामृत जानी॥
पद अंबुज गहि बारहिं बारा। हृदयँ समात न प्रेमु अपारा॥

ओर विभीषणभी प्रभुकी बाणीको सुनता हुआ उसको कर्णामृतरूप जानकर तृप्त नहीं होता था॥ और वारंवार रामचन्द्रजीके चरणकमल धरकर ऐसा आल्हादित हुआ कि वह अपार प्रेम हृदयके अंदर नहीं समाया॥

सुनहु देव सचराचर स्वामी। प्रनतपाल उर अंतरजामी॥
उर कछु प्रथम बासना रही। प्रभु पद प्रीति सरित सो बही॥

इस दशाको पहुँच कर बिभीषणने कहा कि हे देव! चराचरसहित संसारके (चराचर जगतके) स्वामी! हे शरणागतोंके पालक! हे हृदयके अंतर्यामी! सुनिए॥ पहले मेरे जो कुछ वासना थी वहभी आपके चरणकमलकी प्रीतिरूप नदीसे बह गई॥

अब कृपाल निज भगति पावनी। देहु सदा सिव मन भावनी॥
एवमस्तु कहि प्रभु रनधीरा। मागा तुरत सिंधु कर नीरा॥

हे कृपालू! अब आप दया करके मुझको आपकी वह पावन करनहारी भक्ति दीजिए कि जिसको महादेवजी सदा धारण करते हैं॥ रणधीर रामचन्द्रजीने एमवस्तु ऐसे कहकर तुरत समुद्रका जल मँगवाया॥

जदपि सखा तव इच्छा नहीं। मोर दरसु अमोघ जग माहीं॥
अस कहि राम तिलक तेहि सारा। सुमन बृष्टि नभ भई अपारा॥

और कहा कि हे सखा! यद्यपि तेरे किसी बातकी इच्छा नहीं है तथापि जगत्में मेरा दर्शन अमोघ है अर्थात् निष्फल नही है॥ ऐसे कहकर प्रभुने बिभीषणके राजतिलक करदिया. उस समय आकाशमेंसे अपार पुष्पोंकी वर्षा हुई॥

दोहा

रावन क्रोध अनल निज स्वास समीर प्रचंड। जरत बिभीषनु राखेउ दीन्हेउ राजु अखंड ॥49(क)॥

रावणका क्रोध तो अग्निके समान है और उसका श्वास प्रचंड पवनके तुल्य है। उससे जलते हुए विभीषणको बचाकर प्रभुने उसको अखंड राज दिया ॥49(क)॥

दोहा

जो संपति सिव रावनहि दीन्हि दिएँ दस माथ। सोइ संपदा बिभीषनहि सकुचि दीन्हि रघुनाथ ॥49(ख)॥

महादेवने दश माथे देनेपर रावणको जो संपदा दी थी वह संपदा कम समझकर रामचन्द्रजीने बिभीषणको सकुचते हुए दी ॥49(ख)॥

समुद्र पार करने के लिए विचार

चौपाई

अस प्रभु छाड़ि भजहिं जे आना। ते नर पसु बिनु पूँछ बिषाना॥
निज जन जानि ताहि अपनावा। प्रभु सुभाव कपि कुल मन भावा॥

ऐसे प्रभुको छोड़कर जो आदमी दूसरेको भजते हैं वे मनुष्य विना सींग पूंछके पशु हैं॥ प्रभुने बिभीषणको अपना भक्त जानकर जो अपनाया, यह प्रभुका स्वभाव सब वानरोंको अच्छा लगा॥

पुनि सर्बग्य सर्ब उर बासी। सर्बरूप सब रहित उदासी॥
बोले बचन नीति प्रतिपालक। कारन मनुज दनुज कुल घालक॥

प्रभु तो सदा सर्वत्र, सबके घटमें रहनेवाले (सबके हृदय में बसनेवाले), सर्वरूप (सब रूपों में प्रकट), सर्वरहित और सदा उदासीनही हैं॥ राक्षसकुलके संहार करनेवाले, नीतिको पालनेवाले, मायासे मनुष्यमूर्ति (कारण से भक्तों पर कृपा करने के लिए मनुष्य बने हुए), श्रीरामचन्द्रजीने सब मंत्रियोंसे कहा॥

सुनु कपीस लंकापति बीरा। केहि बिधि तरिअ जलधि गंभीरा॥
संकुल मकर उरग झष जाती। अति अगाध दुस्तर सब भाँति॥

कि हे लंकेश (लंकापति विभीषण)! हे वानरराज! हे वीर पुरुषो सुनो, अब इस गंभीर समुद्रको पार कैसे उतरें? वह युक्ति निकालो॥ क्योंकि यह समुद्र सर्प, मगर और अनेक जातिकी मछलियोंसे व्याप्त हो रहा है, बड़ा अथाह है, इसीसे सब प्रकारसे मुझको तो दुस्तर (कठिन) मालूम होता है॥

कह लंकेस सुनहु रघुनायक। कोटि सिंधु सोषक तव सायक॥
जद्यपि तदपि नीति असि गाई। बिनय करिअ सागर सन जाई॥

उसवक्त लंकेश अर्थात् विभीषणने कहा कि हे रधुनाथ! सुनो, आपके बाण ऐसे हैं कि जिनसे करोडो समुद्र सूख जाय, तब इस समुद्रका क्या भार है॥ तथापि नीतिमें ऐसा कहा है कि पहले साम वचनोंसे काम लेना चाहिये, इसवास्ते समुद्रके पास पधार कर आप विनती करो॥

दोहा

प्रभु तुम्हार कुलगुर जलधि कहिहि उपाय बिचारि॥ बिनु प्रयास सागर तरिहि सकल भालु कपि धारि ॥50॥

बिभीषण कहता है कि हे प्रभु! यह समुद्र आपका कुलगुरु है। सो विचार कर अवश्य उपाय कहेगा और उपायको धरकर ये वानर और रीछ विनाही परिश्रम समुद्रके पार हो जाएँगे ॥50॥

समुद्र पार करने के लिए विचार

चौपाई

सखा कही तुम्ह नीति उपाई। करिअ दैव जौं होइ सहाई॥
मंत्र न यह लछिमन मन भावा। राम बचन सुनि अति दुख पावा॥

बिभीषणकी यह बात सुनकर रामचन्द्रजीने कहा कि हे सखा! तुमने यह उपाय तो बहुत अच्छा बतलाया और हम इस उपायको करेंगे भी, परंतु यदि दैव सहाय होगा तो सफल होगा॥ यह सलाह लक्ष्मणके मनमें अच्छी नही लगी अतएव रामचन्द्रजीके वचन सुनकर लक्ष्मणने बड़ा दुख पाया॥

नाथ दैव कर कवन भरोसा। सोषिअ सिंधु करिअ मन रोसा॥
कादर मन कहुँ एक अधारा। दैव दैव आलसी पुकारा॥

और लक्ष्मणने कहा कि हे नाथ! दैवका क्या भरोसा है? आप तो मनमें क्रोध लाकर समुद्रको सुखा दीजिये॥ दैवपर भरोसा रखना यह तो कायर पुरुषोंके मनका एक आधार है; क्योंकि वेही आलसी लोग दैव करेगा सो होगा ऐसा विचार कर दैव दैव करके पुकारते रहते हैं॥

सुनत बिहसि बोले रघुबीरा। ऐसेहिं करब धरहु मन धीरा॥
अस कहि प्रभु अनुजहि समुझाई। सिंधु समीप गए रघुराई॥

लक्ष्मणके ये वचन सुनकर प्रभुने हँसकर कहा कि हे भाई! मैं ऐसेही करूंगा पर तू मनमे कुछ धीरज धर॥ प्रभु लक्ष्मणको ऐसे कह समझाय बुझाय समुद्रके निकट पधारे॥

प्रथम प्रनाम कीन्ह सिरु नाई। बैठे पुनि तट दर्भ डसाई॥
जबहिं बिभीषन प्रभु पहिं आए। पाछें रावन दूत पठाए॥

और प्रथमही प्रभुने जाकर समुद्रको प्रणाम किया और फिर कुश बिछा कर उसके तटपर विराजे॥ जब बिभीषण रामचन्द्रजीके पास चला आया तब पीछेसे रावणने अपना दूत भेजा॥

दोहा

सकल चरित तिन्ह देखे धरें कपट कपि देह। प्रभु गुन हृदयँ सराहहिं सरनागत पर नेह ॥51॥

उस दूतने कपटसे वानरका रूप धरकर वहांका तमाम हाल देखा. तहां प्रभुका शरणागतोंपर अतिशय स्नेह देखकर उसने अपने मनमें प्रभुके गुणोंकी बड़ी सराहना की ॥51॥

रावणदूत शुक का आना

चौपाई

प्रगट बखानहिं राम सुभाऊ। अति सप्रेम गा बिसरि दुराऊ॥
रिपु के दूत कपिन्ह तब जाने। सकल बाँधि कपीस पहिं आने॥

और देखते देखते प्रेम ऐसा बढ़ गया कि वह (रावणदूत शुक) छिपाना भूल कर रामचन्द्रजीके स्वभावकी प्रकटमें प्रशंसा करने लगा॥ जब वानरोने जाना कि यह शत्रुका दूत है तब उसे बांधकर सुग्रीवके पास लाये

कह सुग्रीव सुनहु सब बानर। अंग भंग करि पठवहु निसिचर॥

सुनि सुग्रीव बचन कपि धाए। बाँधि कटक चहु पास फिराए॥

सुग्रीवने देखकर कहा कि हे वानरो सुनो, इस राक्षस दुष्टको अंग-भंग करके भेज दो॥ सुग्रीवके ये वचन सुनकर सब वानर दौड़े, फिर उसको बांध कर कटक (सेना) में चारों ओर फिराया॥

बहु प्रकार मारन कपि लागे। दीन पुकारत तदपि न त्यागे॥
जो हमार हर नासा काना। तेहि कोसलाधीस कै आना॥

वानर उसको अनेक प्रकारसे मारने लगे और वह अनेक प्रकारसे दीनकी भांति पुकारने लगा फिर भी वानरोंने उसको नहीं छोड़ा॥ तब उसने पुकार कर कहा कि जो हमारी नाक कान काटते है उनको श्रीरामचन्द्रजीकी शपथ है॥

सुनि लछिमन सब निकट बोलाए। दया लागि हँसि तुरत छोड़ाए॥
रावन कर दीजहु यह पाती। लछिमन बचन बाचु कुलघाती॥

सेनामें खरभर सुनकर लक्ष्मणने उसको अपने पास बुलाया और दया आ जानेसे हँसकर लक्ष्मणने उसको छुड़ा दिया॥ एक पत्री लिख कर लक्ष्मणने उसको दी और कहा कि यह पत्री रावणको देना और उस कुलघातीकों कहना कि ये लक्ष्मणके हित वचन (संदेसे को) बाँचो॥

दोहा

कहेहु मुखागर मूढ़ सन मम संदेसु उदार। सीता देइ मिलहु न त आवा कालु तुम्हार ॥52॥

और उस मूर्खसे मेरा बड़ा अपार सन्देशा मुहँसेंभी कह देना कि या तो तू सीताजीको देदे और हमारे शरण आजा, नही तो तेरा काल आया समझ ॥52॥

लक्ष्मणजी के पत्र को लेकर रावणदूत का लौटना

चौपाई

तुरत नाइ लछिमन पद माथा। चले दूत बरनत गुन गाथा॥
कहत राम जसु लंकाँ आए। रावन चरन सीस तिन्ह नाए॥

लक्ष्मणके ये वचन सुन तुरंत लक्ष्मणके चरणोंमें शिर झुका कर रामचन्द्रजीके गुणोंकी प्रशंसा करता हुआ वह वहांसे चला॥ रामचन्द्रजीके यशकों गाता हुआ लंकामें आया. रावणके पास जाकर उसने रावणके चरणोंमें प्रणाम किया॥

बिहसि दसानन पूँछी बाता। कहसि न सुक आपनि कुसलाता॥
पुन कहु खबरि बिभीषन केरी। जाहि मृत्यु आई अति नेरी॥

उस समय रावणने हँसकर उससे पूंछा कि हे शुक! अपनी कुशलताकी बात कहो॥ और फिर विभीषणकी कुशल कहो, कि जिसकी मौत बहुत निकट आगयी है॥

करत राज लंका सठ त्यागी। होइहि जव कर कीट अभागी॥
पुनि कहु भालु कीस कटकाई। कठिन काल प्रेरित चलि आई॥

उस शठने लंकाको राज करते करते छोड़ दिया सो अब उस अभागेकी जवके (जौके) घुनके (कीड़ा) समान दशा होगी अर्थात् जैसे जव पीसनेके साथ उसमेंका घुनभी पीस जाता है ऐसे रामके साथ वह भी मारा जायगा॥ फिर कहो कि रीछ और वानरोंकी सेना कैसी और कितनी है कि जो कठिन कालकी प्रेरणासे इधरको चली आती है॥

जिन्ह के जीवन कर रखवारा। भयउ मृदुल चित सिंधु बिचारा॥
कहु तपसिन्ह कै बात बहोरी। जिन्ह के हृदयँ त्रास अति मोरी॥

हे शुक! अभी उनके जीवकी रक्षा करनेवाला बिचारा कोमलहृदय समुद्र हुआ है (उनके और राक्षसों के बीच में यदि समुद्र न होता तो अब तक राक्षस उन्हें मारकर खा गए होते)। सो रहे, इससे कितने दिन बचेंगे॥ और फिर उन तपस्वियोकी बात कहो जिनके हृदयमें मेरी बड़ी त्रास बैठ रही है (मेरा बड़ा डर है)॥

दोहा

की भइ भेंट कि फिरि गए श्रवन सुजसु सुनि मोर।
कहसि न रिपु दल तेज बल बहुत चकित चित तोर ॥53॥

हे शुक! क्या तेरी उनसे भेट हुई? क्या वे मेरी सुख्याति (सुयश) कानोंसे सुनकर पीछे लौट गए। हे शुक! शत्रुके दलका तेज आर बल क्यों नहीं कहता? तेरा चित्त चकित-सा (भौंचक्का-सा) कैसे हो रहा है? ॥53॥

दूत का रावण को समझाना

चौपाई

नाथ कृपा करि पूँछेहु जैसें। मानहु कहा क्रोध तजि तैसें॥
मिला जाइ जब अनुज तुम्हारा। जातहिं राम तिलक तेहि सारा॥

रावणके ये वचन सुनकर शुकने कहा कि हे नाथ! जैसे आप कृपा करके पूंछते हो ऐसेही क्रोधको त्यागकर जो वचन में कहूं उसको मानो॥ हे नाथ! जिससमय आपका भाई रामसे जाकर मिला उसीक्षण रामने उसके राजतिलक कर दिया है॥

रावन दूत हमहि सुनि काना। कपिन्ह बाँधि दीन्हें दुख नाना॥
श्रवन नासिका काटैं लागे। राम सपथ दीन्हें हम त्यागे॥

मै वानरका रूप धरकर सेनाके भीतर घुसा सो फिरते फिरते वानरोंने जब मुझको आपका दूत जान लिया तब उन्होंने मुझको बांधकर अनेक प्रकारका दुःख दिया॥ और मेरी नाक कान काटने लगे तब मैंने उनको रामकी शपथ दी तब उन्होंने मुझको छोड़ दिया॥

पूँछिहु नाथ राम कटकाई। बदन कोटि सत बरनि न जाई॥
नाना बरन भालु कपि धारी। बिकटानन बिसाल भयकारी॥

हे नाथ! आप मुझको वानरोंकी सेनाके समाचार पूँछते हो सो वे सौ करोड़ मुखोंसे तो कहही नहीं जा सकती॥ हे रावण! रीछ और वानर अनेक रंग धारण किये बड़े डरावने दीखते हैं, बड़े विकट उनके मुख हैं और बड़े विशाल उनके शरीर हैं॥

जेहिं पुर दहेउ हतेउ सुत तोरा। सकल कपिन्ह महँ तेहि बलु थोरा॥
अमित नाम भट कठिन कराला। अमित नाग बल बिपुल बिसाला॥

हे रावण! जिसने इस लंकाको जलाया था और आपके पुत्र अक्षकुमारको मारा था उस वानरका बल तो सब वानरों में थोड़ा है॥ उनके बीच कई नामी भट पड़े हे, कि जो बड़े भयानक और बड़े कठोर हैं. जिनके नाना वर्णवाले और विशाल व तेजस्वी शरीर हैं॥

दोहा

द्विबिद मयंद नील नल अंगद गद बिकटासि।
दधिमुख केहरि निसठ सठ जामवंत बलरासि ॥54॥

उनमें जो बड़े बड़े योद्धा हैं उनमेंसे कुछ नाम कहता हूँ सो सुनो – द्विविद, मयन्द, नील, नल, अंगद वगैरे, विकटास्य, दधिरख, केसरी, कुमुद, गव. और बलका पुंज जाम्बवान ॥54॥

रावणदूत शुक का रावण को समझाना

चौपाई

ए कपि सब सुग्रीव समाना। इन्ह सम कोटिन्ह गनइ को नाना॥
राम कृपाँ अतुलित बल तिन्हहीं। तृन समान त्रैलोकहि गनहीं॥

ये सब वानर सुग्रीवके समान बलवान हैं। इनके बराबर दूसरे करोड़ों वानर हैं, कौन गिन सकता है? ॥ रामचन्द्रजीकी कृपासे उनके बलकी कुछ तुलना नहीं है। वे उनके प्रभावसे त्रिलोकीको त्रनके समान समझते हैं ॥

अस मैं सुना श्रवन दसकंधर। पदुम अठारह जूथप बंदर॥
नाथ कटक महँ सो कपि नाहीं। जो न तुम्हहि जीतै रन माहीं॥

हे रावण! वहां मैं गिन तो नहीं सका परंनु कानोंसे ऐसा सुना था कि अठारह पद्म तो अकेले वानरों के सेनापति हैं॥ हे नाथ! उस कटकमें (सेना) ऐसा वानर एकभी नहीं है कि जो रणमें आपको जीत न सके॥

परम क्रोध मीजहिं सब हाथा। आयसु पै न देहिं रघुनाथा॥
सोषहिं सिंधु सहित झष ब्याला। पूरहिं न त भरि कुधर बिसाला॥

सब वानर बड़ा कोध करके हाथ मीजते हैं; परंतु बिचारे करें क्या? रामचन्द्रजी उनको आज्ञा नहीं देते॥ वे ऐसे बली है कि मछलियां और सर्पोंके साथ समुद्रको सुखा सकते हैं और नखोंसे विशाल पर्वतको चीर सकते है॥

मर्दि गर्द मिलवहिं दससीसा। ऐसेइ बचन कहहिं सब कीसा॥
गर्जहिं तर्जहिं सहज असंका। मानहुँ ग्रसन चहत हहिं लंका॥

और सब वानर ऐसे वचन कहते हैं कि हम जाकर रावणको मार कर उसी क्षण धूल में मिला देंगे॥ वे स्वभावसेही निशंक है, सो बेधड़क गरजते है और तर्जते है. मानों वे अभी लंकाको ग्रसना (निगलना) चाहते है॥

दोहा

सहज सूर कपि भालु सब पुनि सिर पर प्रभु राम। रावन काल कोटि कहुँ जीति सकहिं संग्राम ॥55॥

हे रावण! वे रीछ और वानर अव्वल तो स्वभावहीसे शूर-बीर हैं और तिसपर फिर श्रीरामचन्द्रजी सिर पर है। इसलिए हे रावण! वे करोड़ों कालों को भी संग्राममें जीत सकते हैं ॥55॥

रावणदूत शुक का रावण को समझाना

चौपाई

राम तेज बल बुधि बिपुलाई। सेष सहस सत सकहिं न गाई॥
सक सर एक सोषि सत सागर। तव भ्रातहि पूँछेउ नय नागर॥

रामचन्द्रजीके तेज, बल, और बुद्धिकी बढ़ाईको करोड़ों शेषजी भी गा नहीं सकते तब औरकी तो बातही कौन?॥ यद्यपि वे एक बाणसे सौ समुद्रकों सुखा सकते है परंतु आपका भाई बिभीषण नीतिमें परम निपुण है इसलिए श्री राम ने समुद्रका पार उतरनेके लिये आपके भाई विभीषणसे पूछा॥

तासु बचन सुनि सागर पाहीं। मागत पंथ कृपा मन माहीं॥
सुनत बचन बिहसा दससीसा। जौं असि मति सहाय कृत कीसा॥

तब उसने सलाह दी कि पहले तो नरमीसे काम निकालना चाहिये और जो नरमीसे काम नहीं निकले तो पीछे तेजी करनी चाहिये॥ बिभीपणके ये वचन सुनकर श्री राम मनमें दया रखकर समुद्रके पास मार्ग मांगते है॥ दूतके ये वचन सुनकर रावण हँसा और बोला कि जिसकी ऐसी बुद्धि है, तभी तो वानरोंको तो सहाय बनाया है॥

सहज भीरु कर बचन दृढ़ाई। सागर सन ठानी मचलाई॥
मूढ़ मृषा का करसि बड़ाई। रिपु बल बुद्धि थाह मैं पाई॥

और स्वभावसे डरपोंकके (विभीषण के) वचनोंपर दृढ़ता बांधी है तथा समुद्रसे अबोध बालककी तरह मचलना (बालहठ) ठाना है॥ हे मूर्ख! उसकी झूठी बड़ाई तू क्यों करता वै? मैंने शत्रुके बल और बुद्धिकी थाह पा ली है॥

सचिव सभीत बिभीषन जाकें। बिजय बिभूति कहाँ जग ताकें॥
सुनि खल बचन दूत रिस बाढ़ी। समय बिचारि पत्रिका काढ़ी॥

जिसके डरपोंक बिभीषणसे मंत्री हैं उसके विजय और विभूति कहाँ? ॥ खल रावनके ये वचन सुनकर दूतको बड़ा क्रोध आया। इससे उसने अवसर जानकर लक्ष्मणके हाथकी पत्री निकाली॥

रामानुज दीन्हीं यह पाती। नाथ बचाइ जुड़ावहु छाती॥
बिहसि बाम कर लीन्हीं रावन। सचिव बोलि सठ लाग बचावन॥

ओर कहा कि यह पत्रिका रामके छोटे भाई लक्ष्मणने दी है। सो हे नाथ! इसको पढ़कर अपनी छातीको शीतल करो॥ रावणने हँसकर वह पत्रिका बाएं हाथमें ली और यह शठ (मूर्ख) अपने मंत्रियोंको बुलाकर पढाने लगा॥

दोहा

बातन्ह मनहि रिझाइ सठ जनि घालसि कुल खीस। राम बिरोध न उबरसि सरन बिष्नु अज ईस ॥56(क)॥

(पत्रिका में लिखा था -) हे शट (अरे मूर्ख)! तू बातोंसे मनको भले रिझा ले, हे कुलांतक! अपने कुलका नाश मत कर, रामचन्द्रजीसे विरोध करके विष्णु, ब्रह्मा और महेशके शरण जाने पर भी तू बच नही सकेगा॥56(क)॥

दोहा

की तजि मान अनुज इव प्रभु पद पंकज भृंग।होहि कि राम सरानल खल कुल सहित पतंग ॥56(ख)॥

तू अभिमान छोड़कर अपने छोटे भाईके जैसे प्रभुके चरणकमलोंका भ्रमर होजा। अर्थात् रामचन्द्रजीके चरणोंका चेरा होजा। अरे खल! रामचन्द्रजीके बाणरूप आगमें तू कुलसहित पतंग मत हो, जैसे पतंग आगमें पड़कर जल जाता है ऐसे तू रामचन्द्रजीके बाणसे मरे मत ॥56(ख)॥

चौपाई

सुनत सभय मन मुख मुसुकाई। कहत दसानन सबहि सुनाई॥
भूमि परा कर गहत अकासा। लघु तापस कर बाग बिलासा॥

ये अक्षर सुनकर रावण मनमें तो कुछ डरा, परंतु ऊपरसे हँसकर सबको सुनाके रावणने कहा॥ कि इस छोटे तपस्वीकी वाणीका विलास तो ऐसा है कि मानों पृथ्वीपर पड़ा हुआ आकाशको हाथसे पकड़े लेता है॥

कह सुक नाथ सत्य सब बानी। समुझहु छाड़ि प्रकृति अभिमानी॥
सुनहु बचन मम परिहरि क्रोधा। नाथ राम सन तजहु बिरोधा॥

उस समय शुकने (दूत) कहा कि हे नाथ! यह वाणी सब सत्य है, सो आप स्वाभाविक अभिमानको छोड़कर समझलों॥ हे नाथ! आप कोध तजकर मेरे वचन सुनो, और रामसेजो विरोध बांध रक्खा है उसे छोड़ दो॥

अति कोमल रघुबीर सुभाऊ। जद्यपि अखिल लोक कर राऊ॥
मिलत कृपा तुम्ह पर प्रभु करिही। उर अपराध न एकउ धरिही॥
यद्यपि वे राम सब लोकोंके स्वामी हैं तोभी उनका स्वभाव बड़ाही कोमल है॥ आप जाकर उनसे मिलोगे तो मिलतेही वे आपपर कृपा करेंगे, आपके एकभी अपराधको वे दिलमें नही रक्खेंगे॥

जनकसुता रघुनाथहि दीजे। एतना कहा मोर प्रभु कीजे॥
जब तेहिं कहा देन बैदेही। चरन प्रहार कीन्ह सठ तेही॥

हे प्रभु । एक इतना कहना तो मेरा भी मानो कि सीताको आप रामचन्द्रजीको देदो॥ (शुकने कई बातें कहीं परंतु रावण कुछ नहीं बोला परंतु) जिस समय सीताको देनेकी बात कही उसीक्षण उस दुष्टने शुकको (दूतको) लात मारी॥

नाइ चरन सिरु चला सो तहाँ। कृपासिंधु रघुनायक जहाँ॥
करि प्रनामु निज कथा सुनाई। राम कृपाँ आपनि गति पाई॥

तब वहभी (विभीषण की भाँति) रावणके चरणोंमें शिर नमाकर वहांको चला कि जहां कृपाके सिंधु श्री रामचन्द्रजी विराजे थे॥ रामचन्द्रजी को प्रणाम करके उसने वहांकी सब बात कही। तदनंतर वह राक्षस रामचन्द्रजीकी कृपासे अपनी गति अर्थात् मुनिशरीरको प्राप्त हुआ॥

रिषि अगस्ति कीं साप भवानी। राछस भयउ रहा मुनि ग्यानी॥
बंदि राम पद बारहिं बारा। मुनि निज आश्रम कहुँ पगु धारा॥

महादेवजी कहते हैं कि हे पार्वती! यह पूर्वजन्ममें बड़ा ज्ञानी मुनि था, सो अगस्त्य ऋषिके शापसे राक्षस हुआ था॥ यहां रामचन्द्रजीके चरणोको वारंवार नमस्कार करके फिर अपने आश्रमको गया॥

समुद्र पर श्री रामजी का क्रोध

दोहा

बिनय न मानत जलधि जड़ गए तीनि दिन बीति। बोले राम सकोप तब भय बिनु होइ न प्रीति ॥57॥

जब जड़ समुद्रने विनयसे नहीं माना अर्थात् रामचन्द्रजीको दर्भासनपर बैठे तीन दिन बीत गये तब रामचन्द्रजीने क्रोध करके कहा कि भय विना प्रीति नहीं होती ॥57॥

समुद्र पर श्री रामजी का क्रोध

चौपाई

लछिमन बान सरासन आनू। सोषौं बारिधि बिसिख कृसानु॥
सठ सन बिनय कुटिल सन प्रीति। सहज कृपन सन सुंदर नीति॥

हे लक्ष्मण! धनुष बाण लाओ. क्योंकि अब इस समुद्रको बाणकी आगसे सुखाना होगा॥ देखो, इतनी बातें सब निष्फल जाती हैं। शठके पास विनय करना, कुटिल आदमीसे प्रीति रखना, स्वाभाविक कंजूस आदमीके पास सुन्दर नीतिका कहना॥

ममता रत सन ग्यान कहानी। अति लोभी सन बिरति बखानी॥
क्रोधिहि सम कामिहि हरिकथा। ऊसर बीज बएँ फल जथा॥

ममतासे भरेहुए जनके पास ज्ञानकी बात कहना, अतिलोभीके पास वैराग्यका प्रसंग चलाना॥ क्रोधीके पास समताका उपदेश करना, कामी (लंपट) के पास भगवानकी कथाका प्रसंग चलाना और ऊसर भूमिमें बीज बोना ये सब बराबर है॥

अस कहि रघुपति चाप चढ़ावा। यह मत लछिमन के मन भावा॥
संधानेउ प्रभु बिसिख कराला। उठी उदधि उर अंतर ज्वाला॥

ऐसे कहकर रामचन्द्रजीने अपना धनुष चढ़ाया. यह रामचन्द्रजीका मत लक्ष्मणके मनको बहुत अच्छा लगा॥ प्रभुने इधर तो धनुषमें विकराल बाणका सन्धान किया और उधर समुद्रके हृदयके बीच संतापकी ज्वाला उठी॥

मकर उरग झष गन अकुलाने। जरत जंतु जलनिधि जब जाने॥
कनक थार भरि मनि गन नाना। बिप्र रूप आयउ तजि माना॥

मगर, सांप, और मछलियां घबरायीं और समुद्रने जाना कि अब तो जलजन्तु जलने है॥ तब वह मानको तज, ब्राह्मणका स्वरूप धर, हाथमें अनेक मणियोंसे भराहुआ कंचनका थार ले बाहिर आया॥

दोहा

काटेहिं पइ कदरी फरइ कोटि जतन कोउ सींच। बिनय न मान खगेस सुनु डाटेहिं पइ नव नीच ॥58॥

काकभुशुंडिने कहा कि हे गरुड़! देखा, केला काटनेसही फलता है. चाहो दूसरे करोडों उपाय करलो और ख़ूब सीच लो, परंतु बिना काटे नहीं फलता। ऐसेही नीच आदमी विनय करनेसे नहीं मानता किंतु डाटनेहीसे नमता है ॥58॥

समुद्र की श्री राम से विनती

चौपाई

सभय सिंधु गहि पद प्रभु केरे। छमहु नाथ सब अवगुन मेरे॥
गगन समीर अनल जल धरनी। इन्ह कइ नाथ सहज जड़ करनी॥

समुद्रने भयभीत होकर प्रभुके चरण पकड़े और प्रभुसे प्रार्थना की कि हे प्रभु मेरे सर्व अपराध क्षमा करो॥ हे नाथ! आकाश, पवन, अग्नि, जल, और पृथ्वी इनकी करणी स्वभावहीसे जड़ है॥

तव प्रेरित मायाँ उपजाए। सृष्टि हेतु सब ग्रंथनि गाए॥
प्रभु आयसु जेहि कहँ जस अहई। सो तेहि भाँति रहें सुख लहई॥

और सृष्टिके निमित्त आपकीही प्रेरणासे मायासे ये प्रकट हुए है, सो यह बात सब ग्रंथोंमें प्रसिद्ध हे॥ हे प्रभु! जिसको स्वामीकी जैसी आज्ञा होती है वह उसी तरह रहता है तो सुख पाता है॥

प्रभु भल कीन्ह मोहि सिख दीन्ही। मरजादा पुनि तुम्हरी कीन्ही॥
ढोल गवाँर सूद्र पसु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी॥

हे प्रभु! आपने जो मुझको शिक्षा दी, यह बहुत अच्छा किया; परंतु मर्यादा तो सब आपकी ही बांधी हुई है॥ ढोल, गँवार, शूद्र, पशु और स्त्री ये तो सब ताड़नकेही अधिकारी हैं॥

प्रभु प्रताप मैं जाब सुखाई। उतरिहि कटकु न मोरि बड़ाई॥
प्रभु अग्या अपेल श्रुति गाई। करौं सो बेगि जो तुम्हहि सोहाई॥

हे प्रभु! मैं आपके प्रतापसे सूख जाऊंगा और उससे कटक भी पार उतर जायगा. परंतु इसमें मेरी महिमा घट जायगी॥ और प्रभुकी आज्ञा अपेल (अर्थात अनुल्लंघनीय – आज्ञा का उल्लंघन नहीं हो सकता) है। सो यह बात वेदमें गायी है। अब जो आपको जँचे वही आज्ञा देवें सो मै उसके अनुसार शीघ्र करूं॥

दोहा

सुनत बिनीत बचन अति कह कृपाल मुसुकाइ। जेहि बिधि उतरै कपि कटकु तात सो कहहु उपाइ ॥59॥

समुद्रके ऐसे अतिविनीत वचन सुनकर, मुस्कुरा कर, प्रभुने कहा कि हे तात! जैसे यह हमारा वानरका कटक पार उतर जाय वैसा उपाय करो ॥59॥

चौपाई

नाथ नील नल कपि द्वौ भाई। लरिकाईं रिषि आसिष पाई॥
तिन्ह कें परस किएँ गिरि भारे। तरिहहिं जलधि प्रताप तुम्हारे॥

रामचन्द्रजीके ये वचन सुनकर समुद्रने कहा कि हे नाथ! नील और नल ये दोनों भाई है। नलको बचपनमें ऋषियोंसे आशीर्वाद मिला हुआ है॥ इस कारण हे प्रभु! नलका छुआ हुआ भारी पर्वत भी आपके प्रतापसे समुद्रपर तैर जायगा॥ (नील और नल दोनो बचपनमें खेला करते थे। सो ऋषियोंके आश्रमोंमें जाकर जिस समय मुनिलोग शालग्रामजीकी पूजा कर आख मूंद ध्यानमें बैठते थे, तब ये शालग्रामजीको लेकर समुद्रमें फेंक देते थे। इससे ऋषियोंने शाप दिया कि नलका डाला हूआ पत्थर नहीं डुबेंगा। सो वही शाप इसकेवास्ते आशीर्वादात्मक हुआ।)

मैं पुनि उर धरि प्रभु प्रभुताई। करिहउँ बल अनुमान सहाई॥
एहि बिधि नाथ पयोधि बँधाइअ। जेहिं यह सुजसु लोक तिहुँ गाइअ॥

हे प्रभु! मुझसे जो कुछ बनसकेगा वह अपने बलके अनुसार आपकी प्रभुताकों हदयमें रखकर में भी सहाय करूंगा॥ हे नाथ! इस तरह आप समुद्रमें सेतु बांध दीजिपे कि जिसको विद्यमान देखकर त्रिलोकीमें लोग आपके सुयशको गाते रहेंगे॥

एहि सर मम उत्तर तट बासी। हतहु नाथ खल नर अघ रासी॥
सुनि कृपाल सागर मन पीरा। तुरतहिं हरी राम रनधीरा॥

हे नाथ! इसी बाणसे आप मेरे उत्तर तटपर रहनेवाले पापके पुंज दुष्टोंका संहार करो॥ ऐसे दयालु रणधीर श्रीरामचन्द्रजीने सागरके मनकी पीड़ाका जानकर उसको तुरंत हरलिया॥

देखि राम बल पौरुष भारी। हरषि पयोनिधि भयउ सुखारी॥
सकल चरित कहि प्रभुहि सुनावा। चरन बंदि पाथोधि सिधावा॥

समुद्र रामचन्द्रजीके अपरिमित (अपार) बलको देखकर आनंदपूर्वक सुखी हुआ॥ समुद्रने सारा हाल रामचन्द्रजीको कह सुनाया, फिर चरणोंको प्रणाम कर अपने धामको सिधारा॥

दोहा (Doha – Sunderkand)

छं० – निज भवन गवनेउ सिंधु श्रीरघुपतिहि यह मत भायऊ। यह चरित कलि मलहर जथामति दास तुलसी गायऊ॥
सुख भवन संसय समन दवन बिषाद रघुपति गुन गना। तजि सकल आस भरोस गावहि सुनहि संतत सठ मना॥

समुद्र तो ऐसे प्रार्थना करके अपने घरको गया। रामचन्द्रजीके भी मनमें यह समुद्रकी सलाह भा गयी। तुलसीदासजी कहते हैं कि कलियुग के पापों को हरनेवाला यह रामचन्द्रजीका चरित मेरी जैसी बुद्धि है वैसा मैंने गाया है; क्योंकि रामचन्द्रजीके गुणगाण (गुणसमूह) ऐसे हैं कि वे सुखके तो धाम हैं, संशयके मिटानेवाले है और विषाद (रंज) को शांत करनेवाले है सो जिनका मन पवित्र है और जो सज्जन पुरुष है, वे उन चरित्रोंको सब आशा और सब भरासोंको छोड़ कर गाते हैं और सुनते हैं॥

दोहा

सकल सुमंगल दायक रघुनायक गुन गान। सादर सुनहिं ते तरहिं भव सिंधु बिना जलजान ॥60॥

सर्व प्रकारके सुमंगल देनेवाले रामचन्द्रजीके गुणोंका जो मनुष्य गान करते है और आदरसहित सुनते हैं वे लोग संसारसमुद्रको बिना नाव पार उतर जाते हें ॥60॥

इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने पंचमः सोपानः समाप्तः।

कलियुग के समस्त पापों का नाश करनेवाले श्री रामचरितमानस का यह पाँचवाँ सोपान समाप्त हुआ।